

आत्मा के जैसे न जी पाने के कारण



लेखक:

ब्रह्मविद्धरिष्ठ

तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

आत्मा के जैसे न जी पाने के कारण



लेखक: ब्रह्मविद्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी
हिन्दी अनुवाद: श्रीमति जे.पुष्पलता

For Books Please Contact :
TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO
Tatavarthivari Street, BHIMAVARAM-534201.
W.G.Dist., A.P. Ph: 94403 09812

Rs.60/-



ब्रह्मविध्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी के हिन्दी किताब

- 1) एक और जन्म Rs.160/-
- 2) साधना में स्थितियाँ..... Rs.80/-
- 3) आत्मा का विकास क्रम Rs.80/-
- 4) ज्ञान माला Rs.70/-
- 5) श्री दत्तात्रेय जी का 24 गुरूओं ।..... Rs.70/-
- 6) अविद्या क्या है । Rs.70/-
- 7) अगर मानव को योगी बनना है तो ? Rs.60/-
- 8) गुरु पूर्णिमा का विशिष्टता Rs.60/-
- 9) आत्मा के जैसे न जी पाने के कारण Rs.60/-
- 10) मानव के कर्तव्यों..... Rs.50/-
- 11) गुरु पूर्णिमा का विशिष्टता Rs.50/-
- 12) जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए ? Rs.50/-

ध्यान की पद्धति - श्वास पर ध्यान

हर किसी को अपने लिए उपयुक्त सुखासन में आराम से बैठकर.. दोनों हाथों को मिलाकर... आंखों को बंद करके... सहज रूप से होने वाले उच्छ्वास और निश्वास पर गौर करना है !

बीच में कई सारे विचार हमारे मन में आते रहते हैं, उन सबका खंडन करते हुए... वापस हमारे ध्यान को श्वास पर लाना है... ध्यान भटकता रहेगा लेकिन वापस श्वास पर ध्यान लाते रहना है. धीरे-धीरे.. विचार रहित स्थिति प्राप्त होगी... चित्तवृत्ति का निरोध होगा मन शून्य बन जाएगा। मन शांति प्राप्त करेगा। यही ध्यान स्थिति है।

इस विचार रहित स्थिति में प्राप्त होने वाले शारीरिक, तंत्रिका व्यवस्था और आत्मानुभव पर ध्यान देते रहना है। उस स्थिति में असीमित विश्वमय प्राणशक्ति शरीर के अंदर प्रवाहित होकर तंत्रिका व्यवस्था की शुद्धि करती है। इस शक्ति के कारण सारे रोग दूर हो जाते हैं। तंत्रिका व्यवस्था की शुद्धि के कारण सारे कर्म दूर हो जाते हैं।

साधारण रूप से मनुष्य की उम्र जितनी है.. कम से कम उतने मिनट तक.. हर रोज दिन में दो बार... ध्यान करना है।

आत्मा के जैसे न जी पाने के कारण

एक व्यक्ति को जीवन में कुछ भी हासिल करना है, तो सही साधना, सत्य ज्ञान होना चाहिए। इन दोनों के होने पर ही वह कुछ भी हासिल कर सकता है। सृष्टि में मौजूद 84 लाख जीव-राशियों में मानव जन्म एक ही भगवान को जान सकने वाला, कुछ भी हासिल कर सकने वाला जन्म है।

आप कई विषयों को जान रहे हैं, लेकिन “आप आत्मा हैं”, ऐसा गुरुजनों ने कितना बोध करने पर भी, आप आत्मा के जैसे नहीं जी पा रहे हैं। आध्यात्मिक मार्ग में आते ही गुरुजन यह सिखाते हैं कि आप आत्मा हैं। इसका कारण यह है कि यदि आप स्वयं को शरीर मानेंगे, तो उन्नत लक्ष्यों को हासिल नहीं कर पाएंगे।

जब आपमें “मैं शरीर हूँ” का भावना रहता है, तब आप यह सोचते हैं कि मुझमें महान कार्य करने की शक्ति नहीं है। भगवान की तस्वीर के सामने बैठकर “मुझे शक्ति दीजिए, मेरी रक्षा कीजिए”, ऐसी प्रार्थना करते रहते हैं। अनेक जन्मों से आप यही करते आए हैं। इस ध्यान मार्ग में आने तक आपको यह पता ही नहीं था कि देने वाला कोई नहीं है। आप इतने समय से इसी भावना में रहे हैं कि “मैं जीव हूँ, भगवान अलग हैं, वे देते हैं, मैं कुछ हासिल कर सकता हूँ।”

आप चाहे पूजा करें या भगवान से संबंधित कोई भी साधना करें, आपके मन में यही भावना रहता है कि “भगवान मुझसे महान हैं और यदि वे अनुग्रह करेंगे, तभी मैं कुछ हासिल कर सकता हूँ।” जब आपको यह पता नहीं था, तब आप ऐसे ही रहे। लेकिन अब गुरु की वजह से आपने एक महान सत्य को जान लिया है। आपने यह जान लिया है कि “आप

स्वयं भगवान के स्वरूप हैं” और “आप आत्मा हैं।”

तो चलिए, अब यह जानते हैं कि इस सत्य को जान लेने के बाद भी आप आत्मा के जैसे क्यों नहीं जी पा रहे हैं।

1) कई जन्मों से मैं शरीर हूँ इसी जीव भावना से जीते आ रहे हैं। आपमें यह भावना क्या है कि “मैं” कहते ही इस शरीर को दिखाते हैं। यानी “मैं” कहते ही आपको शरीर ही याद आती है, वैसे ही अनुसार व्यवहार करते आए हैं। यह जीव भावना है। क्योंकि आपने यह भावना रखा कि यह शरीर ही मैं हूँ, लेकिन यह भावना नहीं रखा कि “आत्मा ही मैं हूँ।”

इसलिए जन्म-जन्मांतरों से उसी भावना में रहने की आदत के कारण, आत्मा होते हुए भी आप अभी भी इसी तरह व्यवहार कर रहे हैं, मानो यह शरीर ही मैं हूँ। लेकिन इस भावना के साथ नहीं जी रहे हैं कि “मैं आत्मा हूँ।” यह जीव भावना मन की आदत बन चुका है। मन ने “मैं जीव हूँ” की भावना को मजबूती से पकड़ रखा है। इसलिए आप भी उसी जीव भावना के साथ जी रहे हैं।

यदि आप अपने आसपास की दुनिया को देखें, तो कोई भी आत्मा की तरह व्यवहार करता हुआ दिखाई नहीं देता। सभी लोग यही मानकर व्यवहार करते हैं कि “मैं जीव हूँ।” कोई भी महान काम करने पर या प्रशंसा पाने पर, वह सब शरीर को ही मिलता है। जबकि वास्तव में इस शरीर के माध्यम से ये महान कार्य करवाने वाली आत्मा ही है। आप यह जानते हैं, लेकिन यह आपकी निरंतर जागरूकता में नहीं है।

आपने यह समझ तो लिया है कि इस शरीर में आत्मा होने की वजह से ही यह शरीर बड़े-बड़े कार्य कर पा रहा है, लेकिन आप उस भावना में पूरी तरह से नहीं जी रहे हैं। इसका कारण यह है कि जन्म-

जन्मांतरों से “मैं शरीर हूँ” ऐसा भावना, आपको सत्य को जानने पर भी अनजाने के जैसे व्यवहार करवाता है। मन को बहुत आदत पड़ चुकी है, इसीलिए आप उसी तरह से जी रहे हैं।

आप कहते हैं कि यह संसार अशाश्वत है, लेकिन आचरण में आप इसी संसार से मिलने वाली बड़प्पन के लिए ही अधिकता से प्रयास करते हैं। अशाश्वत संसार में मिलने वाली सफलताएँ भी अशाश्वत ही होती हैं, फिर भी उन्हें प्राप्त करने पर आप खुद को बहुत महान मानते हैं।

उदाहरण के लिए जब आपके बेटे को बड़ी नौकरी मिलती है, तो होने वाले आनंद की कोई सीमा नहीं होती। आप गर्व से सभी को बताते हैं, “मेरे बेटे का पैकेज इतना है”, “मेरे बेटे का पैकेज उतना है”। दोस्तों को दावत देते हैं, सभी को बताकर खुशी होते हैं।

लेकिन आपका बेटा ज्ञानी बन गया है और ध्यान कर रहा है, यह बात सभी को बताकर उसी स्तर में खुशी मनाने वाले लोग बहुत दुर्लभ हैं। कितने लोग ऐसे हैं जो फोन करके गर्व से कहते हैं कि “मेरा बेटा ध्यान कर रहा है”? लेकिन अगर अच्छा रैंक मिल जाए, तो बड़े उत्साह के साथ सभी को बताते हैं।

इससे क्या समझ में आता है कि? आपको सत्य को जानने पर भी, आपका मन बार-बार दुनिया में मिलने वाली पहचान, प्रशंसा और सफलताओं की ओर ही भाग रहा है। दस लोग आपकी तारीफ करें, आपके बच्चों की तारीफ करें, यह इच्छा बहुत प्रबल है।

गौर से देखिए बचपन से ही बच्चों को अच्छे रैंक आने के लिए कितना श्रद्धा रखते हैं। लेकिन यह सवाल पूछना चाहिए कि क्या ध्यान जानने वाले माता-पिता भी पढ़ाई के साथ उसी स्तर पर आध्यात्मिक शिक्षा दे रहे हैं? बच्चे रोज़ कितने घंटे ध्यान कर रहे हैं, यह पूछने वाले लोग बहुत कम हैं। क्लास में रैंक नहीं आए तो डाँटने वाले माता-पिता होते हैं,

लेकिन अगर बच्चा एक दिन ध्यान न करने पर भी परवाह नहीं करते।

उसका कारण आध्यात्मिक जीवन के प्रति पहले से आदत न होना ही है। सत्य को जानने पर, आप खुद को उस सत्य में जीने की आदत नहीं कर रहे हैं।

उदाहरण के लिए एक दिन भूख लगे और खाना न मिले, तो बहुत पीड़ा होती है। लेकिन एक दिन ध्यान न करने पर भी, उस स्तर पर पीड़ा नहीं होती। क्योंकि शरीर की जरूरतों को महत्व देने की आदत हो गई, आत्मा की जरूरतों को महत्व देने की आदत अभी नहीं हुआ। यही आत्मा के जैसे जीने में मुख्य रुकावट है।

यदि ध्यान नहीं करते हैं, तो क्या आपको बहुत अधिक पीड़ा होती है? नहीं न? “समय नहीं है”, “गर्मी का मौसम है न”, “बच्चे घर आए हैं”, “अचार बनाना है” कहकर कई कारण बताते हैं। गर्मी का मौसम आते ही खास पकवान बनाते हैं, आम का फल खाते हैं, नए आम के अचार डालते हैं। शरीर के लिए आवश्यक सभी चीजें अतिरिक्त रूप से जुटा लेते हैं। लेकिन उसी समय में अतिरिक्त रूप से ध्यान करना चाहिए, ऐसा कभी सोचा है क्या?

शरीर का पोषण करने के लिए आवश्यक हर चीज़ जुटा लेते हैं। ठंडा रहने के लिए एसी, खाने के लिए स्वादिष्ट आहार, सारी सुविधाओं की व्यवस्था कर लेते हैं। लेकिन आत्मा के लिए किस मौसम में अधिक ध्यान करते हैं? बारिश के मौसम में? ठंड के मौसम में? या गर्मी के मौसम में? वास्तव में किसी भी मौसम में विशेष रूप से ध्यान नहीं करते।

बिजली जाने पर ए.सी. काम नहीं करेगा तो नींद नहीं आने पर दुखी होते हैं। लेकिन ध्यान न करने पर उतना दुखी नहीं होते। नया अचार हो तो ज्यादा खाते हैं, आम का फल हों तो खुशी से खाते हैं। यानी शरीर की

जरूरतों को बहुत अधिक प्राधान्यता देते हैं।

हालाँकि दूसरी ओर “शरीर शाश्वत नहीं है”, “मैं शरीर नहीं हूँ”, ये बातें बहुत अच्छे से कहते हैं, मंचों पर भाषण भी देते हैं। दुनिया माया है, देहाभिमान गलत है, ऐसा बोध करते हैं। गुरुजी ने कहा है, इसलिए आप भी वही बातें कहते रहते हैं। माइक मिल जाए, तो “यह माया है” बोलते हैं। लेकिन गुरुजन भगवान से, सत्य से जुड़कर बोल रहे हैं, उन्हें सत्य के दर्शन हुए हैं, सत्य की अनुभूति हुई है। लेकिन हमें अभी तक न तो सत्य के दर्शन हुए हैं, न ही सत्य की अनुभूति हुई है। फिर भी बोलते ही रहते हैं। अनुभूति न होने के कारण सत्य से जुड़ाव नहीं हो हुआ। इसी वजह से ‘मैं आत्मा हूँ’ इस सच को भूलकर, आत्मा होते हुए भी खुद को शरीर ही मानकर, देहाभिमान से व्यवहार करते रहते हैं। क्योंकि गुरुओं द्वारा बताए गए ज्ञान आपको मालूम है, लेकिन यदि वह ज्ञान अनुभव में नहीं बदला है, तो इसका अर्थ यही है कि सत्य के साथ अभी संपूर्ण अनुसंधान नहीं हुआ है।

2) एक और महत्वपूर्ण कारण विषयासक्ति। नए विषय जानने की आसक्ति से दूसरों के बारे में सुनते रहते हैं। सुनी हुई विषयों को मन में बार-बार याद करते हैं, वह पर्याप्त न होने पर किसी और को बताते हैं, इस तरह समय बीतता जाता है। यदि ऐसे ही रहोगे तो जीव की तरह ही रहोगे, भगवान नहीं बन पाओगे।

राम, कृष्ण जैसे महान पुरुषों ने अपना जीवन को दूसरों की गलतियाँ बताने में नहीं बिताया। उनका दृष्टि केवल लोक-कल्याण पर ही था। लेकिन दुनिया में उनका कल्याण ही अभी पूरी तरह से हासिल नहीं कर पाए हैं। इसलिए ध्यान और ज्ञान के माध्यम से सबसे पहले आपमें बदलाव आना चाहिए। क्योंकि यदि आप ध्यान करेंगे तो लाभ आपको ही

मिलेगा, यदि आप ज्ञान प्राप्त करेंगे तो आपका जीवन ही बदलेगा।

लेकिन अगर आप खुद से यह सवाल पूछें कि आत्मा के लिए हम कितना त्याग कर रहे हैं, तो कहते हैं कि हमने मांसाहार, लहसुन छोड़ दिया है। शाकाहार के बारे में पत्नी जी ने जो कारण बताया है, केवल आहार का नियम नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य मन को और अधिक सात्त्विक, दैवीय गुणों के साथ विकसित करना है। राक्षसी स्वभाव का अर्थ है, स्वार्थ, हिंसा, दूसरों को नुकसान पहुँचाने की भावना। दैवीय स्वभाव का अर्थ है, प्रेम, करुणा, सेवा, विश्व-कल्याण। इसीलिए ध्यान साधना के माध्यम से दैवीय गुणों को विकसित करने के लिए कहा था।

लेकिन यदि अभी भी विषयासक्ति, देह-भ्रांति, संसार की भ्रांति, बंधनों के प्रति ममकार मजबूत है, तो केवल “मैं आत्मा हूँ” कहने पर्याप्त नहीं है, आत्मा के जैसे जीना भी सीखना चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण विषय यह है कि दिव्यता का अर्थ, दूसरों को परेशान किए बिना जीना, साथी मनुष्य के कष्ट को समझना, छोटी विषयों में अनुशासन, जिम्मेदारी होनी चाहिए। “क्या मेरी वजह से किसी को परेशानी हो रही है?”, ऐसा सोचना चाहिए।

जब आप दूसरों का भला चाहते हुए, प्रेम से, करुणा से, जिम्मेदारी के साथ जीते हैं, तभी दैवीय गुण आते हैं। जब आप दस लोगों के लिए आदर्श बनकर जी सकते हैं, तभी वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति शुरू होती है।

ध्यान करने का मुख्य कारण मन की गंदगी को दूर करना है, यह गंदगी सिर्फ एक जन्म में आई हुई नहीं है। अनेक जन्मों से जमा किए हुए बुरे संस्कार, वासनाएँ, अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध, मोह जैसी मलिन्याँ मन में जमा हो गए हैं।

जैसे कपड़ों पर दाग लग जाएँ तो उन्हें साफ करते हैं, वैसे ही मन

पर लगे इन संस्कारों के दागों को दूर करने के लिए ध्यान आवश्यक है। ध्यान के माध्यम से मन शुद्ध होता है। जैसे-जैसे मन शुद्ध होता जाता है, आत्मा का स्वरूप स्पष्ट रूप से अनुभव में आता है। तभी “मैं आत्मा हूँ” का ज्ञान केवल बात के रूप में नहीं, बल्कि सत्य के जैसे बदलता है।

अब एक उदाहरण लेते हैं। आप अच्छी साड़ी पहनकर बाहर जाती हैं। तब मान लीजिए, बगल से एक कार तेजी गति से जाकर कीचड़ को साड़ी पर उछाल देती है। गौर से देखिए तुरंत कितना दुःखी होते हैं। “कितनी अच्छी साड़ी खराब कर दी!” ऐसा कहते हैं। क्योंकि साड़ी पर गंदागी पड़ गई, उसकी सुंदरता कम हो गई। धोने पर भी कुछ दाग नहीं निकल सकते हैं, उन दाग जब-जब दिखाई देते हैं, तब-तब फिर से दुख, गुस्सा होते हैं।

इसी तरह जन्म-जन्मांतर से अहंकार से, अज्ञान से, स्वार्थ से की गई सभी गलतियाँ भी आत्मा पर दागों की तरह छप गई हैं। भगवान केवल यह नहीं कहते कि पापों को ही दूर करना चाहिए; बल्कि उन पापों की वजह से बनी वासनाओं को, संस्कारों को, दागों को भी दूर करना चाहिए, ऐसा कह रहे हैं। वे ही एक जन्म से दूसरे जन्म में बदली होते आ रहे हैं।

आखिर वे वासनाएँ, संस्कार क्यों आए हैं ? आपने आपको को शरीर मानकर कई गलतियाँ किए हैं। अब “मैं आत्मा हूँ” इस सत्य को जानने के बाद भी, यदि आप सांसारिक विषयों के प्रभाव से इच्छाओं को बढ़ाते हुए, गलत विचारों को वश में होते हुए जिएँ, तो नए दाग बनते हैं। क्योंकि अधिकतर गलतियों का मूल कारण इच्छाएँ ही हैं। इच्छा बढ़ जाए तो उसे हासिल करने के लिए दूसरों को दुख पहुँचाने के लिए भी तैयार हो जाते हैं, इच्छा न हो तो दुख भी नहीं होगा।

जन्म-जन्मांतर से इन मलिनाओं को जमा करने के कारण ही,

इस जन्म में “आप दैवस्वरूप हैं” यह सत्य जानते हुए भी तुरंत उस स्थिति में नहीं रह पा रहे हैं। इन दागों को मिटाने के लिए ही साधना आवश्यक है।

ये दाग किस रूप में बाहर आ रहे हैं ? बीमारियों के रूप में, कष्टों के रूप में, दुखों के रूप में। आपको होने वाली कई बीमारियाँ, कठिनाइयाँ, पिछले जन्मों में देहाभिमान के साथ किए गए कर्मों का फल ही हैं। गुरु के मिल जाने पर भी, साधना करने पर भी, अभी कुछ कर्मफल अनुभव करना पड़ता है।

लेकिन इस साधना में अच्छाई भी है, बुराई भी है। अच्छाई यह है कि आपने सत्य को जान लिया है, साधना के मार्ग पर आ चुके हैं। बुराई यह है कि अभी भी आपमें दुख, पीड़ाएँ, बीमारियाँ, संस्कार बचे हुए हैं, जिन्हें धीरे-धीरे दूर करना चाहिए।

इसलिए गुरुजन बार-बार साधना करने के लिए कहते हैं। साधना के माध्यम से मन में जमा गंदगी को दूर करना चाहिए। “मैं जीव हूँ” के भावना को छोड़कर, “मैं आत्मा हूँ” के भावना को मजबूत करना चाहिए, तभी वास्तविक ज्ञान बढ़ेगा।

यदि आप खुद को शरीर मानते हैं, तो केवल कंठस्थ किए हुए तोते की तरह रहेंगे। तोता वही बोलता है जो उसे सिखाया जाता है, उसी तरह आप भी केवल सुनी हुई विषयों को ही बोल पाएँगे, लेकिन भीतर से ज्ञान नहीं आता।

जब साधना बढ़ती है, मन की गंदगी कम होती है, तब आत्मा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। तब दूसरों की कही हुई बात पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं होती, आत्मा से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही सत्य के निकट ले जाता है।

इसीलिए गौतम बुद्ध ने भी कहा था, “मैंने कहा है, इसलिए विश्वास मत करो, अपने अनुभव से सत्य को जानिए।” गुरु मार्ग दिखा सकते हैं, लेकिन अनुभूति तो आपको स्वयं ही प्राप्त करनी चाहिए।

मनुष्य को जीवभावना में रखने वाले तीन प्रमुख कारण हैं, “अज्ञान, अहंकार और आशा”। जब तक ये तीनों होते हैं, तब तक जीवभावना रहेगा। इन तीनों के हट जाने पर दिव्यता प्रकट होती है।

* अज्ञान का अर्थ है “मैं जीव हूँ” ऐसा भावना करना।

* अहंकार का अर्थ है धन, सुंदरता, पद और प्रशंसा आदि की वजह से घमंड बढ़ना।

* आशा का अर्थ है सब कुछ मुझे ही चाहिए, ऐसी स्वार्थ की भावना।

अहंकार आध्यात्मिक मार्ग में बहुत खतरनाक है। जब “मैंने किया”, “मैं ही महान हूँ” ऐसा भावना आता है, वहीं से पतन प्रारंभ होता है। जब दूसरे आपकी तारीफ़ करते हैं, आपका मन फूल जाता है, तो आप अभी भी मनःस्थिति में ही हैं, आत्मस्थिति में नहीं हैं।

क्योंकि आत्मा का स्वरूप सत-चित-आनंद है। उसमें ‘चित’ का अर्थ है – चैतन्य, ज्ञान। आपके माध्यम से प्रकट होने वाला सच्चा ज्ञान भी उसी आत्मा से आता है। लेकिन उस ज्ञान को व्यक्त करने के बाद यदि “मैंने ही कहा है” ऐसा अहंकार हो, तो वह फिर से देहाभिमान ही है।

वास्तव में ज्ञान देने वाली आत्मा ही है। जब मन पवित्र होता है, तब आत्मा से ज्ञान प्राप्त होता है। इसीलिए बुद्ध की जीवन चरित्र पढ़ने से समझ में आता है। वे अनेक गुरुओं के पास घूमने पर भी, दूसरों की अनुभूति पर केवल विश्वास नहीं किया। उन्होंने स्वयं अनुभव होने तक प्रयास किया, यही सच्ची साधना है। गुरु बता सकते हैं कि भगवान कैसे

होते हैं, लेकिन दैवानुभूति का अनुभव आपको स्वयं ही प्राप्त करनी होगी। उसी अनुभूति को पाने के लिए ही साधना कर रहे हैं। लेकिन यदि मन गंदा हो, तो आत्मानुभूति नहीं होती।

फिर मन में होने वाली गंदगी क्या है ?

- * स्वार्थ
- * ईर्ष्या
- * असूया (जलन)
- * अहंकार
- * अज्ञान
- * आशा

ये सभी मन को कलूषित करने वाली मलिनाएँ हैं। “सब कुछ मुझे ही चाहिए”, ऐसा सोचना स्वार्थ है। “बगल वाले को नहीं मिलना चाहिए, सिर्फ मुझे ही मिलना चाहिए”, ऐसा सोचना आशा है। ये दैवीय गुण नहीं हैं।

दैवीय गुण क्या है कि - देना। सृष्टि को गौर से देखिए, जब फसल पकती है, तो केवल अच्छे लोग ही नहीं, बुरे लोग भी खाते हैं। सूर्य सभी को प्रकाश देता है, बारिश सभी पर बरसती है। इसलिए प्रकृति कभी कोई पक्षपात नहीं दिखाती है।

यही दैवीय स्वभाव है, भगवान हमेशा देता है, बाँटता है, प्रेम करता है। इसीलिए देवत्व की ओर बढ़ना है, तो अपने भीतर के स्वार्थ, अहंकार, अज्ञान, आशाओं को घटाते हुए प्रेम, करुणा, सेवा, त्याग जैसे गुणों को विकसित करना चाहिए। तभी “मैं आत्मा हूँ” ऐसा ज्ञान अनुभव के रूप में बदल जाता है।

लेकिन मानव का लक्षण क्या है कि “मैं ही, मेरे लिए ही, मेरा

ही'' ऐसे भावना में रहना चाहिए, यही मानव स्वभाव है। परंतु जब इस भावना से ऊपर उठकर त्याग के गुण में जीना शुरू करते हैं, तब आप जल्दी द्वैत्व के निकट पहुँचते हैं।

भगवान को सबसे अधिक पसंद गुण त्याग है। राघव राव जी इस स्तर तक आगे बढ़े हैं, तो उनसे किया गया दान ही है। यदि आप गौर से देखेंगे, तो जीवन में उन्नत स्तर तक आगे बढ़े अनेक व्यक्तियों की उन्नति का मूल कारण दान, सेवा, त्याग ही है। जब दूसरों के जीवन में आनंद भर पाते हैं, तब उस सेवा के पीछे के निःस्वार्थ भावना को भगवान पहचानते हैं।

दान करके दूसरों के जीवन में आनंद भरने पर, उन्हें घंटों बैठकर ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। उस ज्ञान को भगवान उन्हें बहुत आसानी से प्रदान कर देते हैं। 'वह कितनी मेहनत कर रहा है, कितने लोगों की सहायता कर रहा है,' यह देखकर उस ज्ञान को भगवान ही उनको प्रदान देते हैं।

आप सोच सकते हैं कि 'राघव राव जी घंटों बैठकर ध्यान कहाँ कर रहे हैं? किताबें कहाँ पढ़ रहे हैं?' लेकिन वे ऐसा कहते ही रहते हैं। असली रहस्य यह है कि उनके पास जो कुछ भी है, उसे देना। वह धन हो सकता है, आपका शारीरिक श्रम हो सकता है, या आपका समय हो सकता है। ऐसे निःस्वार्थ भावना से देने के गुण से प्रसन्न होकर, भगवान उन्हें ज्ञान का महान उपहार देते हैं।

राघवराव जी घंटों तक ध्यान कहाँ कर रहे हैं? पुस्तकें कहाँ पढ़ रहे हैं? ऐसा सोच सकते हैं। लेकिन वे ऐसा कहते ही रहते हैं। असल रहस्य यह है कि उनके पास जो है, उसे देना। आपका शारीरिक श्रम हो सकता है, आपका समय हो सकता है। ऐसे निःस्वार्थ देने के गुण को

भगवान सराहकर उन्हें ज्ञान का महान उपहार देते हैं।

इसलिए यदि कोई ज्ञानी बनना चाहता है, तो सबसे पहले आपके पास जो है, उसे बाँटना सीखना चाहिए। वह धन हो सकता है, समय हो सकता है, वाणी हो सकती है, श्रम हो सकता है या प्रेम हो सकता है। जो कुछ भी देना सीखते हैं, वेही सच्ची आध्यात्मिक प्रगति हासिल करते हैं।

शुरुआत में छोटे-छोटे सेवा कार्यक्रमम करते रहते हैं, तो क्रमशः बड़ी सेवाओं के अवसर आते हैं। जो छोटी जिम्मेदारियों को सही तरीके से निभाते हैं, उन्हें ही बड़ी जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती हैं। इसीलिए आपके सामने आए कर्तव्य को भगवान की सेवा मानकर करना चाहिए।

आपसे किए जाने वाले हर अच्छे काम में, “मैं कर रहा हूँ” का भावना होने के बजाय, “भगवान मेरे माध्यम से करवा रहे हैं” का भावना बढ़ना चाहिए। यह भावना होना चाहिए कि भगवान ने आपको चुनकर, आपके माध्यम से वह काम करवा रहे हैं, यही आध्यात्मिक प्रगति की नींव है।

ये सब विषय आप जानते हैं, आप जानते हैं कि “मैं आत्मा हूँ”, आप जानते हैं कि आत्म-साक्षात्कार पाने के लिए मन पवित्रता से होना चाहिए, और यह भी जानते हैं कि मन कितना निर्मल हो, तो आत्मानुभूति उतनी ही जल्दी होती; लेकिन कमी ज्ञान में नहीं, आचरण में है।

बहुत संदर्भों में आलस्य, सुस्ती, लापरवाही आपकी प्रगति में रुकावट बनकर खड़ी होती हैं। थोड़ा सा प्रयास करने पर किए जा सकने वाले कामों को भी टाल देते हैं। इसीलिए गुरुजन सबसे पहले विषयासक्ति को कम करने के लिए कहते हैं।

आपके लिए आवश्यक न होने वाली विषयों पर आसक्ति दिखाना, अपने मन में विष भरने जैसा ही है। आपसे असंबंधित मामले, दूसरों के

जीवन के बारे में अनावश्यक चर्चाएँ, गॉसिप, आलोचनाएँ, ये सभी मन को कलुषित करती हैं।

उदाहरण के लिए यदि आपको किसी दवा की आवश्यकता न होने पर भी केवल वह दिखाई देने के कारण पी लेते हैं, तो शरीर को नुकसान ही होती है। उसी प्रकार यदि आपको अनावश्यक विषयों को मन में भरते हैं, तो मानसिक शांति नष्ट हो जाती है।

आप गौर से देखिए कि जब आप ध्यान करने पर अच्छी आध्यात्मिक विषयों को सुनते हैं, तो मन शांत रहता है। लेकिन यदि कोई फोन करके “उसके साथ ऐसा हो गया”, “उसकी मृत्यु हो गई”, या “वहाँ समस्या आ गई”, ऐसे विषयों को कहने पर मन तुरंत विचलित हो जाता है। जिस व्यक्ति के साथ वह घटना घटी है, उससे अधिक, सुनने वाले आपके मन में ही अधिक अशांति होती है।

इसीलिए पत्री जी ने एक विषय कही थी कि: “तुम्हारी आत्मोन्नति के लिए उपयोगी न होने वाली हर विषय विष है; तुम्हारी आत्मोन्नति के लिए सहायक होने वाली हर विषय अमृत है।”

कुछ लोग गाइडिंग, म्यूजिक लगाकर ध्यान करते हैं। वह न करने पर सामने वाले क्या सोचेंगे, ऐसा भी मानते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, “पत्री जी ने म्यूजिक लगाया था, इसलिए हम भी लगा रहे हैं।” यदि उनसे पूछा जाए कि “क्या हिमालय के ऋषियों, महर्षियों ने भी म्यूजिक लगाकर ध्यान किया था?”, तो वे कहते हैं कि हमें नहीं पता, पत्री जी ने लगाया था, इसलिए हम भी लगा रहे हैं।

यानी सत्य क्या है, नहीं जानते, उसके बारे में अध्ययन नहीं करते हैं। इस वजह से यह सही है? या नहीं? यह समझे बिना यदि वर्षों तक उसी तरीके से ध्यान करते हैं, तो बिना प्रगति के वैसे ही रह जाते हैं।

शापग्रस्त लोगों को ऐसे गुरु मिलते हैं। उन्हें सत्य को सत्य के रूप में समझने का धैर्य नहीं होता। यदि विचार न हो, तो कोई भी गलत मार्ग पर चला जाए तो, भी वह गलत भी नहीं लगता। इस तरह कुछ जन्म गाइडिंग, म्यूज़िक लगाकर ध्यान कर रहे हैं, ऐसी भावना में बीत जाते हैं। यदि पंद्रह साल बीत जाने पर भी जीवन में वास्तविक प्रगति न हो, तो वह व्यर्थ ही है, ना? एक बार विचार करें, तो यह वषय समझ में आ जाएगी।

बुद्ध ने किस संगीत के साथ ध्यान किया था? ऋषियों ने किस संगीत के साथ ध्यान किया था? यदि पत्री जी ने म्यूज़िक रखा था, तो उसका कारण क्या है, यह जानना चाहिए। लेकिन कारण जाने बिना अंधे के जैसे अनुसरण करते हुए, “पत्री जी ने रखा था, इसलिए हम भी अपने सेंटर में भी रखेंगे” ऐसा कहेंगे तो नुकसान आपका ही होगा।

प्रकृति हर किसी को अच्छे अवसर देती है। लेकिन कुछ लोग आँखों के सामने ही सत्य दिखाई देने पर भी उसे देख न पाने की स्थिति में पड़ जाते हैं। ध्यान का अर्थ “निर्विषयं मनः” ऐसा कहने पर फिर यह ध्वनि क्यों आ रही है, यह विचार आपके मन में आना चाहिए, ना?

वैसे ही जब आप गुरु के साथ मिलकर यात्रा करने के समय वे कई विषयों को बोलते रहते हैं। वे आपको छोटे विषयों को जैसे लग सकती हैं, लेकिन उनमें बहुत-सा परमार्थ छिपा होता है।

पत्री जी कहते थे, “मेरे मुँह से नई बात निकले, तो तुरंत नोट कर लीजिए।” इसीलिए हम उन्हें नोट कर लेते थे, मुझसे भी ज्यादा, राघवराव जी हमेशा अपनी जेब में एक पुस्तक, पेन रखते थे। पत्री जी कोई नया कोटेशन कहते, तो तुरंत लिखते थे। क्योंकि पत्री जी अपने अनुभव से हमको बता रहे हैं, उनको पकड़ लें, तो हम और आगे जा सकते हैं।

इन्द्रिय निग्रह के बारे में बात करें, तो सभी इन्द्रियों से मन को

नियंत्रण करना बहुत कठिन है। आँखें बंद कर सकते हैं, कानों को सुनाई न दे सकते हैं, बिना बोले मौन रह सकते हैं, लेकिन मन को यदि कहें कि “मत सोचो”, कहने पर भी रोका नहीं सकते। आँखें बंद करने पर भी विचार आते ही रहते हैं।

अन्तरिन्द्रिय मन का निग्रह करना बहुत कठिन है, लेकिन उस मन को भी नियंत्रित करने की शक्ति श्वास में है। इसीलिए श्वास के प्रति जागरूकता बढ़ाना ध्यान में सबसे महत्वपूर्ण वषय है।

इसीलिए जीवन में धन, सोना, संपत्ति से भी मूल्यवान श्वास है। धन न हो तो भी जी सकते हैं, सोना न हो तो भी जी सकते हैं, लेकिन श्वास न हो तो जीवन समाप्त हो जाता है। जिस क्षण श्वास रुक जाती है, उसी क्षण यह शरीर अपना मूल्य खो देता है। क्योंकि आत्मा इस शरीर को छोड़कर चली जाती है। इसीलिए ज्ञानी लोग समय को व्यर्थ नहीं करते। यह श्वास कब तक चलती रहेगी, यह कोई नहीं जानता, इसलिए जो सीखना है वह अभी सीखना चाहिए, जो करना है वह अभी करना चाहिए।

भगवान हर मनुष्य को अवसर देता है, लेकिन उनका उपयोग करना आपकी जिम्मेदारी है। एक बार एक शिष्य ने गुरुजी से पूछा: “सब कहते हैं कि भगवान दयामय हैं, करुणामय हैं। लेकिन कुछ लोग धनवान हैं तो कुछ गरीब, कुछ लोग सुख से जी रहे हैं, कुछ और कठिनाइयाँ झेल रहे हैं। अगर भगवान वास्तव में दयामय हैं, तो सभी एक जैसे होने चाहिए ना? फिर यह भेद क्यों?” ऐसा उसने पूछा।

तब गुरु जी ने एक उपमान बताया है। “बेटा! भगवान ने किसी को विशेष रूप से कुछ नहीं दिया, किसी से कुछ भी नहीं लिया। उन्होंने अपनी सृष्टि में आवश्यक सभी चीजों को संवृद्धि से रखा है, अब तुम्हें जो चाहिए, वह तुम्हें खुद ही लेना चाहिए।”

एक बार एक स्वामीजी ने पाठशाला में सभी बच्चों को मुरमुरे बाँटने का सोचा। एक बड़ा बोरा लेकर गए और एक ही माप के डिब्बे से सबको बाँटा। तब सबको बराबर-बराबर मिले, यानी भगवान अगर सीधे देते हैं, तो सबको बराबर ही देते हैं।

बाद में वही स्वामीजी एक बार फिर वह बोरा लेकर गए और बोले, “जिसे जितने चाहिए, वह खुद ले लें।” तब जिनके हाथ बड़े थे, उन्हें ज्यादा मिले और जिनके हाथ छोटे थे, उन्हें कम मिले। अब इसमें गलती देने वाले की है या लेने वाले की?

तब गुरुजी ने शिष्य से कहा, “बेटा! सृष्टि में जो भी अवसर, संपदाएँ और शक्तियाँ हैं, भगवान ने उन सभी को समान रूप से रखा है।” तब गुरुजी ने शिष्य से कहा, “बेटा! सृष्टि में मौजूद अवसर, धन-संपदा और शक्तियाँ भगवान ने सभी के लिए बराबर रखी हैं। लेकिन तुम उन्हें कितना प्राप्त कर पाते हो, यह तुम्हारे पुण्य पर निर्भर करता है। जिसने जितना पुण्य किया होगा, उसे उतना ही फल मिलेगा” उन्होंने कहा था।

कुछ लोग अपार पुण्य कमाकर अधिक संपत्ति प्राप्त करते हैं, जबकि कुछ लोग कम पुण्य करके कम फल प्राप्त करते हैं। फिर भी वे अपने पास जो है, उससे संतुष्ट न होकर, अभी और नहीं है कहकर दुखी होते रहते हैं।

भगवान हमेशा एक ही बात कहते हैं: “मैंने सब कुछ सृष्टि में बनाकर रख दिया है, तुम्हें जितना चाहिए, उतना ले लो, मैंने कोई सीमा नहीं रखी है।”

लेकिन लेने की योग्यता का मार्ग पुण्य है। आपके द्वारा किए गए पुण्य के आधार पर संपत्ति, अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ आपके जीवन में आती हैं। पुण्य का अर्थ देना ही है।

कमी भगवान की सृष्टि में नहीं है, कमी आपके द्वारा पुण्य न करने में ही है। यदि आप पुण्य किए बिना भोग चाहते हैं, तो वे कैसे प्राप्त होंगे? भगवान ने सभी को समान अवसर दिए हैं, लेकिन मनुष्य पर्याप्त पुण्य न कमाने के कारण अपने जीवन को स्वयं ही सीमित कर रहे हैं। यह समझें कि “सृष्टि करना भगवान का काम है; पाना जीव का काम है।”

लेकिन पाने की शक्ति कब आती है? जब पुण्य होता है, तब आती है। चाहे पिछले जन्म में हो या इस जन्म में, यदि आपने दूसरों की सहायता करके, दान करके, पुण्य कमाया है, तो इस जन्म में उसके फल प्राप्त करने की योग्यता मिलती है।

इसलिए जैसे-जैसे आपके अंदर ज्ञान बढ़ता है, “मुझे क्या मिलेगा?” यह सोचने के बजाय, “मैं किसको क्या दे सकता हूँ?” यह विचार बढ़ना चाहिए। जब यह समझ आ जाता है कि यह धन-संपत्ति मेरी नहीं है, यह सब भगवान का ही है, तब कोई दुख नहीं होता। बल्कि, जब इन्हें दूसरों के साथ बाँटने का अवसर मिलता है, तो मन प्रसन्न होता है।

जब मनुष्य अज्ञान में होता है, तब वह सोचता है, “यह केवल मेरे पोतों के लिए ही होना चाहिए, सात पीढ़ियों तक खाने पर भी खत्म नहीं होना चाहिए।” वह बच्चों के लिए, पोतों के लिए, परपोतों के लिए जमा करके रखता है लेकिन देना पसंद नहीं करता।

लेकिन ज्ञान आने के बाद यह समझ में आता है कि, “कुछ भी मेरा नहीं है, सब कुछ भगवान का ही है। यह संपत्ति देकर, उसे बाँटने का अवसर भी भगवान ने ही दिया है।” तब देने वाला भी आनंदपूर्वक देता है। जब मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, तब वह पशु के समान होता है; ज्ञान आने के बाद वह पशुपति बन जाता है। पशुपति यानी शिव, देने वाला, बाँटने वाला।

यह सब सीखने के बाद भी “मैं आत्मा हूँ”, फिर भी आत्मा की तरह न रह पाने का कारण यह है कि मन में मौजूद गंदे गुण, जीव भाव ही हैं। लेकिन गुरु कहते हैं: “तुम शरीर नहीं हो। इस शरीर को धारण करने वाली आत्मा हो। शरीर तो केवल एक उपकरण मात्र है। यह न होने पर भी तुम आत्मा ही हो।”

तो आत्मा के जैसे रहने के लिए स्वच्छ होना चाहिए, अहंकार के बिना रहना चाहिए, अज्ञान को दूर करना चाहिए, आशाओं को छोड़ना चाहिए। कभी आशा नहीं करनी चाहिए, आपको जितना प्राप्त में होता है, उतना भगवान निश्चित रूप से देते हैं। कुछ देखने पर भी विचलित न होने वाली मनःस्थिति होनी चाहिए।

“वह मेरे पास होता, तो अच्छा होता” – ऐसी कल्पना भी आशा ही है। जो आपके पास होना चाहिए, वह आपको मिलेगा; पिछले जन्मों के पुण्य से जो प्राप्त करना है, वह प्राप्त करेंगे। लेकिन एक स्तर तक पहुँचने के बाद, “होता तो अच्छा होता” यह सोच भी नहीं होनी चाहिए। हमेशा निश्चित से रहना चाहिए, “मेरी योग्यता के अनुसार, मुझे जो भी संपत्ति देनी चाहिए, वह सब भगवान ने पहले ही दे दी है,” ऐसा विश्वास होना चाहिए।

सृष्टि में मनुष्य गलतियाँ कर सकते हैं, लेकिन भगवान हमेशा निश्चित रूप से व्यवहार करते हैं। भगवान हर किसी को उसके कर्मों के फल के अनुसार परिणाम देते हैं। “मुझे संपत्ति न आने का कारण भी मैं ही हूँ, मुझे संपत्ति आने का कारण भी मैं ही हूँ, भगवान कारण नहीं हैं।”

अगर पिछले जन्म में पुण्य कर्म हों, तो इस जन्म में संपत्तियाँ आती हैं, यदि पिछले जन्म में सत्कर्म किए हों, तो इस जन्म में इस ज्ञानमार्ग पर चलने का अवसर आता है।

वास्तव में सत्कर्मों का पुण्य न हो, तो इस ज्ञानमार्ग में भी नहीं रह सकते। उस पुण्य की वजह से ही आप इस मार्ग में हैं, इस मार्ग के प्रति आपको इतनी आसक्ति, लगाव हो रहा है, इसीलिए इस ज्ञान को बचाना चाहिए। क्लास में सुनते समय ही नहीं, बल्कि बाहर भी हमेशा “मैं आत्मा हूँ” की जागरूकता में रहना चाहिए। बाहर से शरीर के रूप में दिखाई देने पर भी, अंतरंग में हमेशा “मैं आत्मा हूँ” का स्मरण निरंतर रहना चाहिए।

तब कोई गलत काम करने को भी कहे, तो नहीं कर सकते। “मैं आत्मा हूँ, फिर भी चोरी कैसे कर सकता हूँ?” मैं आत्मा हूँ, तो कोई गलत काम कैसे कर सकता हूँ? मैं आत्मा हूँ, इसलिए देने की स्थिति में रहना चाहिए, लेकिन लूटने की स्थिति में नहीं रहना चाहिए – यह भावना स्वाभाविक रूप से आता है।

जब “मैं दैवीय स्वरूप हूँ” का भावना होने पर गलती काम करना असंभव है। लेकिन जैसे ही “मैं शरीर हूँ” का भावना आते ही तुरंत मन प्रवेश करता है, उसके साथ अज्ञान, अहंकार, आशा, स्वार्थ एक-एक करके आते हैं। जो भी अन्याय रूप से कमाया हो, जो भी अवैध रूप से प्राप्त किया हो, अंत में सब कुछ छोड़कर जाना ही पड़ेगा, यह आपको पता है। लेकिन जाते समय उनकी छाया भी आप पर नहीं होनी चाहिए, बिना किसी भ्रांति के, संपूर्ण तृप्ति के साथ जा सकना चाहिए।

“यह होता तो अच्छा होता”, “वह कमी पूरी हो जाती तो अच्छा होता”, “पोता पैदा होता तो अच्छा होता”, “पोते की शादी होने तक जीवित रहता तो अच्छा होता”, ऐसी इच्छाएँ, भ्रांतियाँ रखेंगे, तो फिर जन्म निश्चित है। मानव जन्म मिलने के लिए, साधना के मार्ग पर होने के लिए, “मैं दैवीय स्वरूप हूँ” का ज्ञान प्राप्त होने के लिए तृप्ति के साथ जीना चाहिए।

जो तृप्ति यह ध्यान मार्ग देता है, वह करोड़ों रुपये भी नहीं दे सकते हैं। करोड़ों रुपये होने वाले लोग भी इस स्तर की शांति के साथ नहीं जी सकते। इस मार्ग देने वाला आनंद संपत्तियाँ नहीं दे सकतीं, पद नहीं दे सकते, इंद्रिय सुख नहीं दे सकते। इसीलिए ऋषियों ने सब कुछ छोड़कर चले गए, संसार को छोड़ा, समाज को छोड़ा, इच्छाओं पर विजय प्राप्त किया, इंद्रिय सुखों को छोड़ दिया। उनके ऐसा चले जाने का कारण यह था कि वे मानते थे कि इसमें मिलने वाला आनंद करोड़ों संपत्ति से अधिक, संपदा से, उन्नत पदों से अधिक, दुनिया के किसी भी सुख से कहीं अधिक महान है।

अब यह सब आपको पता चल रहा है, समझ में आ रहा है, लेकिन ऐसा न जी पाने के मुख्य कारण दो ही हैं। एक देहभ्रांति, दूसरा विषयासक्ति। ये दोनों ही मनुष्य के लिए बड़ी रुकावट हैं।

“मैं शरीर हूँ” की भ्रांति, बगल वाले के विषयों पर आसक्ति, यदि इन दोनों को कम कर सकें, तो आपने आधी दूरी तय कर ली है। यही आपको डुबोते रहते हैं।

देह का उपयोग हमेशा अच्छे कामों के लिए ही होना चाहिए। अच्छे काम करेंगे तो अच्छे कर्म ही मिलेंगे, जिससे बीमारियों के लिए, दुःखों के लिए अवसर कम होता है। “परोपकारार्थं इदं शरीरम्” कहा गया है, अर्थात् इस शरीर से अपनी आत्मोन्नति को देखना चाहिए। वैसे ही सामने वाले के लिए उपयोगी काम थोड़ा-सा भी करना चाहिए।

एक तरफ साधना के माध्यम से आत्मोन्नति हासिल करनी चाहिए, दूसरी तरफ बगल वालों की थोड़ी-सी भी सहायता कर सकना चाहिए। ऐसा कर सकेंगे तो इस मानव शरीर को प्राप्त करने के कारण आप वास्तव में भाग्यशाली हैं।

“सब कुछ मुझे ही चाहिए,” ऐसा सोचने वाला स्वार्थी होता है। इस विश्व में भगवान जिसकी प्राप्ति में जितना है, उतना ही देते हैं। यदि आपको और अधिक चाहिए, तो भगवान किसके पास से लेकर आपको देना चाहिए? किसकी संपत्ति लेकर आपके हाथ में रखना चाहिए? जो आपका है, वही आपको देगा।

कितना भी कमा लें, खाना तो चार इडली ही है। फिर इतनी बेचैनी क्यों? क्या आप चालीस इडली खा सकते हैं? नहीं खा सकते। क्या सोने से बनी इडली भी निगल सकते हैं? नहीं निगल सकते। जिसका उपयोग नहीं किया जा सकता, उसके लिए इतनी आशा करना क्यों? जो है, उसमें तृप्त रहना ध्यानी का लक्षण है। जो कुछ पास है, उसमें असंतुष्ट से रहना अज्ञानी का लक्षण है। ज्ञानी हमेशा अपने पास जो है, उसमें खुशी से रहता है।

क्या आप जानते हैं कि आपको तृप्ति कब आता है? जब बगल वालों से तुलना करना छोड़ देते हैं। मनुष्यों की समस्या यह है कि वे अपने पास जो है, उसे देखने के बजाय बगल वालों के पास जो है, उसे देखते हैं। किसी शादी जाने पर, किसी समारोह में जाने पर भी बगल वालों के पास जो है, उसी को देखते हैं।

“उसका नेकलेस अच्छा है”, “उसकी साड़ी अच्छी है”, “मेरे पास भी वह होता तो अच्छा होता”, ऐसे विचार आने शुरू हो जाते हैं। वहीं से असंतुष्टि शुरू होता है, उस क्षण में एक बार सोचिए। वो औरत मेरे नेकलेस के लिए दुखी नहीं हो रही है, लेकिन मैं उस औरत की नेकलेस के लिए दुखी हो रही हूँ। यह ज्ञान जब आता है, तब कोई आशा नहीं रहती।

यह सब सुनने के बाद आपको एक वषय समझनी चाहिए।

“मुझे जितना मिलना चाहिए, उतना भगवान ने दिया है; अब इससे अधिक माँगना भी आशा ही” है। आज आपने जो कपड़े पहने हैं, जो भोजन किया है, जो सुविधाएँ आपके पास हैं, वे सब भगवान का प्रसाद ही हैं। जिनके पास ये सब भी नहीं हैं, उनसे तुलना करें तो आप बहुत भाग्यशाली हैं।

चाहे एक लाख रुपये की साड़ी खरीद लें, फिर भी शांति से नहीं सो पाएँगी; 300 रुपये की नाइटी पहनकर कम्फर्ट से महसूस होते हैं।

ध्यान नहीं लग पा रहा है, इस बात का दुःख होना चाहिए; ज्ञान बढ़ नहीं पा रहा है, इस बात का दुःख होना चाहिए। लेकिन साड़ियाँ, गहने, वस्तुएँ नहीं हैं, इस बात का दुःख नहीं होना चाहिए। पड़ोस वाले दस घंटे ध्यान कर रहे हैं, मैं एक घंटा भी ध्यान नहीं कर पा रहा हूँ, ऐसा सोचकर दुखी होना आध्यात्मिक दुःख है, यही आध्यात्मिक विकास है। उनको भी पत्नी जी ही गुरु हैं, मुझको भी पत्नी जी गुरु ही हैं। वे इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं, मैं क्यों आगे नहीं बढ़ पा रहा हूँ? ऐसा सोचना चाहिए।

साधना नहीं हो पा रही है, ज्ञान नहीं बढ़ रहा है, तो उस समय मन को व्यथित होना चाहिए। संसार की विषयों के लिए नहीं, आप जानते हैं कि संसार की सारी चीज़ों को एक दिन छोड़कर जाना ही पड़ेगा। इसीलिए उन चीज़ों के बारे में असंतुष्ट के साथ जिएँगे, तो साधना कभी नहीं हो पाएगी।

बाहरी रूप से आप किसी के साथ भी कैसे भी रहें, लेकिन अंतरंग में “मैं आत्मा हूँ” की जागरूकता निरंतर होनी चाहिए। जैसे-जैसे वह जागरूकता बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे आपका व्यवहार भी बदल जाएगा। जब आप सोचेंगे कि “मैं आत्मा हूँ”, तो देने का गुण बढ़ेगा। जब सोचेंगे कि “मैं शरीर हूँ”, तो सबके पास से प्राप्त करने का स्वभाव बढ़ेगा। देने वाला ही महान है, सबके पास से लेने वाला महान नहीं है। यदि आपको लगता है कि “मैं आत्मा होकर भी आत्मा के जैसे नहीं जी पा रहा हूँ”, तो

इसका अर्थ है कि अभी भी आपमें अज्ञान है, अहंकार है, आशाएँ हैं। यदि इन तीनों को दूर कर सकें, तो जीव के रूप में रहने वाले आप भगवान की तरह जीना शुरू करते हैं।

जब यह समझ आ जाती है कि मैं आत्मा हूँ, इसलिए मुझे आत्मा की तरह ही व्यवहार करना चाहिए”, तब बुरे विचार, बुरी भावनाएँ क्रमशः कम हो जाती हैं। जिसमें दैवीय गुण होते हैं, उसे सामने वालों को कुछ न कुछ देने की तड़प के साथ रहता है। इसीलिए सबसे पहले आपको अपने व्यवहार को बदलना चाहिए, तभी हम आत्म-स्थिति में स्थिर रह सकेंगे।

आत्मा कैसी होती है ? जीव कैसा होता है ? भगवान कैसा होता है ? इन को जानते हुए, उन लक्षणों को अपना लें, तो जीव के जैसे पैदा होने पर भी आप भगवान की तरह जीकर, ज्ञानी के जैसे इस संसार से विदा हो पाएंगे। “अज्ञानी के जैसे पैदा होना गलत नहीं है, लेकिन ज्ञानी के जैसे मरने का प्रयास करना चाहिए।” साधना करके, ज्ञान को बढ़ाने वाला ज्ञानी के जैसे ही मर जाता है, ज्ञानी को मृत्यु का भय नहीं होता। अज्ञानी को तो मृत्यु शब्द सुनते ही भय शुरू होता है। इसीलिए गुरुजन मृत्यु के बारे में अधिक बताते हैं, वे मृत्यु के भय को दूर करने के लिए ही आते हैं।

ऐ ज्ञान आने के बाद मृत्यु से भय नहीं लगता। इस शरीर से काम पूरा होने के बाद आत्मा अपनी यात्रा जारी रखती है, यह समझ में आता है, इसीलिए हर क्षण जागरूक में रहना चाहिए। “बाह्य में द्वैत हो सकता है, लेकिन अंतरंग में अद्वैत होना चाहिए, मैं आत्मा हूँ” की जागरूकता हमेशा होनी चाहिए।

परम सत्य प्राप्त करना हो तो ?

हर मनुष्य के जीवन में और जानने के सत्य, समझने वाले विषय, सीखने लायक ज्ञान जैसे कई होते हैं। जन्म से ही आध्यात्मिक मार्ग पूरी तरह से जाना हुआ विषय नहीं है।

दुनिया में बहुत से लोग केवल भक्ति को ही आध्यात्मिकता के जैसे मानते हैं। पूजा-पाठ करना, मंदिरों में जाना, तीर्थयात्राएँ करने से आध्यात्मिकता आ गई है, ऐसा ही मानते हैं। लेकिन वे केवल शुरुआती कदम ही हैं। सच्ची आध्यात्मिकता का अर्थ अपने भीतर मौजूद आत्म-स्वरूप को जानना।

“आत्मा ही भगवान है”, इस परम सत्य को गहराई से समझने पर ही सच्ची आध्यात्मिक यात्रा शुरू होती है। “बाहर भगवान को खोजने से लेकर, अपने भीतर के देवत्व को अनुभव करने की स्थिति तक पहुँचना ही वास्तविक आध्यात्मिकता है।”

सांसारिक जीवन में जिनमें सच्ची भक्ति होती है, उनमें “भगवान को जानना है, उन तक पहुँचना है” की तड़प निश्चित रूप से होती है। ऐसी पवित्र भक्ति होने पर ही मनुष्य के जीवन में महान बदलाव शुरू होते हैं। भक्ति क्रमशः ज्ञान के मार्ग पर ले जाती है। तब “आत्मा ही भगवान है” इस परम सत्य को गुरुओं के माध्यम से जानने का अवसर मिलता है।

मनुष्य अज्ञान में रहकर, असत्य को ही सत्य मानकर जी रहा होता है, तब भी भगवान उसे नहीं छोड़ते। जिनमें सच्ची तड़प होती है, उनके जीवन में सही समय पर एक सद्गुरु को भेजकर, उन्हें असली सत्य का बोध कराया है।

उदाहरण के लिए राघव राव जी को लें, तो वेंकटेश्वर स्वामी पर

उनकी अपार भक्ति थी। वे उस मूर्ति के सामने घंटों तक भक्ति से रहते थे। ऐसी तीव्र भक्ति, सच्ची तड़प के कारण ही भगवान पत्नी जी जैसे सद्गुरु को उनके जीवन में लेकर आए।

“भगवान को जानना हो तो बाहरी रूपों में नहीं, बल्कि अंतर में मौजूद आत्मस्वरूप में उन्हें जानना चाहिए,” यह परम सत्य का बोध कराकर, उन्होंने उन्हें आत्ममार्ग में चलाया। इसीलिए जिनमें तीव्र भक्ति होती है, वे ही ध्यान भी तीव्रता से करते हैं। ज्ञान सुनने के लिए तैयार होने पर ही उन्हें सत्य का बोध होता है।

इसीलिए यमधर्मराज ने नचिकेता को “प्रेयो मार्ग” और “श्रेयो मार्ग” नामक दो मार्गों के बारे में बोध कराया। प्रेयो मार्ग मनुष्य को भौतिक संसार, इच्छाओं, इंद्रिय सुखों की ओर ले जाता है। लेकिन श्रेयो मार्ग मनुष्य को आत्मज्ञान, परमात्मा की ओर ले जाता है। इस सृष्टि में दिखाई न देने वाले लोकों के सत्य भी केवल श्रेयो मार्ग में चलने वालों को ही समझ में आते हैं।

ध्यान मार्ग में आने से पहले आपको मुख्य रूप से स्वर्ग, नरक और पृथ्वी के बारे में ही पता था। सभी लोग भी स्वर्ग प्राप्त करने के लिए ही अधिक प्रयास करते थे। लेकिन भगवद्गीता में कहा गया है, “क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।” अर्थात् पुण्य क्षीण होने के बाद फिर से पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है। फिर से इन कष्टों को, दुःखों को अनुभव करना ही पड़ेगा। इन सत्यों को सुनने को समझ में आने जैसा लगता है, लेकिन इनके गहरे अर्थ को स्पष्ट रूप से बताने वाले कोई नहीं हैं। माता-पिता को यह आध्यात्मिक ज्ञान पता नहीं है, आसपास के लोगों को भी पता नहीं है, स्कूल में पढ़ाने वाले शिक्षकों को भी इस आत्मज्ञान के बारे में पता नहीं है। इसीलिए “भगवान कौन हैं?” इस प्रश्न का उत्तर न होने के कारण, वे

असमंजस में जी रहे हैं। कई पूजा करने पर भी, मंदिरों में घूमने पर भी, दुःख दूर नहीं हो रहा है, इस पीड़ा के साथ बहुत-से लोग जीवन बिता रहे हैं।

लेकिन पत्नी जी ने हमारे जीवन में आने के बाद, इस महान परम सत्य को बताया कि “आपके दुःख का कारण भी आप ही हैं, आपकी खुशी का कारण भी आप ही हैं।” उन्होंने बोध कराया कि कोई और आकर आपके जीवन में दुःख नहीं भरता, आपके कर्म ही आपके दुःख का कारण हैं। इस सत्य को समझने के बाद यह समझ बनी कि “मेरा दुःख मेरे पूर्वजन्म के कर्मों का फल है, इसे दूर करने के मार्ग में ही मेरे प्रयास में कमी है।”

इससे पहले “मेरी कठिनाइयाँ दूर होनी चाहिए, मेरा दुःख दूर होना चाहिए” यह सोचकर घंटों तक पूजा, अर्चना, अभिषेक करने पर भी मन की शांति नहीं मिलती थी। क्योंकि आप परिष्कार को बाहर ढूँढ रहे हैं। लेकिन गुरुजी ने आत्म-मार्ग को दिखाकर जब यह कहा कि “अपनी वास्तविकता के आप ही सृष्टिकर्ता हैं,” तो उसके बाद तब से बाहर खोजना छोड़कर अंतर्मुख होना सीखा है।

तब तक ध्यान क्या है, यह भी पूरी तरह से मालूम नहीं था। बताने वाला भी कोई नहीं था। लेकिन “आत्मा ही भगवान है, भगवान ही आपमें आत्मा के जैसे हैं,” इस सत्य को समझने के बाद, इस सृष्टि को चलाने वाले सर्वात्मा बाहर नहीं, आपमें ही हैं ऐसा मानकर अन्वेषण करना शुरू किया। “वही सच्ची आध्यात्मिक यात्रा का आरंभ है।”

भगवान को बाहर खोजना नहीं, आपमें ही खोजना आपने शुरू किया। आपका प्रयास जितना सच्चाई से, तीव्रता से, हो तो भगवान के प्रति आपकी भक्ति भी उतनी ही गहराई से बदलता है। क्योंकि आध्यात्मिक मार्ग का पहला कदम भक्ति है। भक्ति के बिना न पूजा है, न ध्यान है। यदि

ये दोनों न हों, तो मनुष्य पूरी तरह भौतिक संसार तक ही सीमित होकर, नास्तिकता में जीना शुरू करता है।

नास्तिकता क्यों खतरनाक है, क्योंकि ऐसी स्थिति में पाप भीति कम हो जाती है। “मुझसे किया गया काम का परिणाम होता है” – यदि यह समझ न हो, तो मनुष्य जैसा चाहे, वैसा व्यवहार करने की अवसर होती है। अगर पूजा-पाठ करने वाला व्यक्ति ही कभी-कभी गलतियाँ करे, तो जो व्यक्ति भगवान पर भरोसा ना होने वाले व्यक्ति में पाप भीति कैसे होगा? इसीलिए बहुत से लोग अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करते हुए जीते हैं।

भगवान यानी भय होना चाहिए, अर्थ, “मेरे द्वारा किए गए हर कर्म का फल मुझे अवश्य मिलता है”, ऐसी सावधानी, समझ होनी चाहिए। “मैं पाप करूँ, तो उसका फल मुझे ही अनुभव करना चाहिए”, जब यह चेतना होती है, तभी सच्ची भक्ति शुरू होती है।

अब तक आपने जो ज्ञान जाना है, उसके माध्यम से एक महान विषय स्पष्ट हुई है। आपमें मौजूद भगवान को जानने पर ही सबसे उन्नत आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन उस परमानंद को प्राप्त करना हो तो परम श्रेयो मार्ग में चलना चाहिए। यही सत्य की ओर ले जाने वाला सच्चा मार्ग है।

श्रेयो मार्ग का अर्थ केवल भौतिक संसार नहीं है, बल्कि यह दिखाई न देने वाले लोकों के ज्ञान को, आत्मज्ञान को जानने का मार्ग है। हालाँकि इस मार्ग में भी हमारा दृष्टि अंत में आत्मा पर ही टिकना चाहिए। क्योंकि आत्मा को जानना सबसे उन्नत साधना है। वह सामान्य रूप से सभी को आसानी से प्राप्त नहीं होता। कई जन्मों का पुण्य, तड़प, साधना होने पर ही मन इस मार्ग की ओर मुड़ता है।

ऐसा परम “श्रेयस को प्राप्त करना हो तो, अधिक आनंद के लिए अल्प सुखों का त्याग करना चाहिए।” इस पृथ्वी पर दुःख, भय, असंतुष्टि से रहित स्थिति देने वाला महोन्नत आनंद क्या है, यह जानने की तड़प आपमें होनी चाहिए। वही तड़प मनुष्य को सामान्य जीवन से आध्यात्मिक जीवन की ओर ले जाती है।

यदि आप ऐसा महोन्नत, महान आनंद पाना चाहते हैं, तो शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो इस पृथ्वी पर मौजूद अल्प सुखों को छोड़ना चाहिए। इसी विशेष को शंकराचार्य ने भी कहा है। “अधिक पाना हो तो कम को छोड़ना चाहिए।” “छोटे-छोटे त्याग करने पर ही अधिक सुख प्राप्त कर सकते हैं।”

“अल्प इंद्रिय-सुखों को छोड़ने पर ही आत्मानंद की ओर यात्रा प्रारंभ होती है।” “अस्थायी सुखों को छोड़ने पर ही शाश्वत आनंद का अनुभव करने की योग्यता मिलती है।”

“सबसे पहले अल्प सुखों को छोड़ना सीखना चाहिए।” उदाहरण के लिए यदि सुबह चार बजे उठकर ध्यान करना है, तो सबसे पहले नींद जैसे अल्प सुख का त्याग करना चाहिए। वह त्याग कठिन लगने पर भी, ध्यान में आपको प्राप्त होने वाला आनंद उससे कहीं अधिक महान है। उन दो-तीन घंटों की साधना से आप भगवान के और भी करीब पहुँचेंगे। इस प्रकार अल्प सुखों को छोड़ने पर ही आत्मानंद प्राप्त करने की योग्यता आपमें बढ़ती है।

दूसरी विषय, “आत्मानंद प्राप्त करना है तो विषयानंद के प्रति आसक्ति कम करनी चाहिए।” यदि मन केवल इंद्रियों से संबंधित अस्थायी सुखों में ही डूबा रहेगा, तो आत्मानंद का अनुभव नहीं कर पाएँगे। सच्चा आत्मानंद ज्ञान बढ़ने पर मिलता है। इसीलिए एक ओर ध्यान-साधना के

माध्यम से मन को परिशुद्ध रखना चाहिए, दूसरी ओर ज्ञान से संबंधित विषयों को जानना चाहिए। ये दोनों मिलकर मनुष्य को आत्मानंद की ओर ले जाते हैं।

ध्यान की वजह से कर्म क्रमशः पिघल जाते हैं। मुख्य रूप से कई जन्मों से जमा किए हुए संचित कर्म भी साधना की वजह से दग्ध हो जाते हैं। लेकिन उनके पिघलने के समय में बाहर तुरंत बड़े परिणाम दिखाई नहीं दे सकते हैं। इसलिए “मैं इतनी साधना कर रहा हूँ, फिर भी कोई बदलाव दिखाई नहीं दे रहा है”, ऐसा सोचकर निरस्ताह नहीं होना चाहिए।

इसीलिए “इतनी साधना कर रहा हूँ, फिर भी मुझे कोई फल दिखाई नहीं दे रहा है”, इस तरह व्यावसायिक दृष्टि से नहीं सोचना चाहिए। भगवान की ओर आप जो हर छोटा कदम उठाते हैं, उसे भी वे पहचानते हैं। आपने सच्चाई से की हुई साधना व्यर्थ नहीं जाएगी। क्रमशः आपकी गलतियों को क्षमा करके, आपके कर्मों को दग्ध करने के लिए भगवान तैयार रहते हैं।

आत्मानंद नामक परम श्रेयस प्राप्त करना हो तो, विषयानंद नामक लौकिक आकर्षणों के प्रति आसक्ति कम करनी चाहिए। क्योंकि यदि मन हमेशा बाहर की दुनिया में ही डूबा रहेगा तो, अंदर मौजूद आनंद का अनुभव नहीं कर पाएँगे।

बहुत से लोग अपनी उन्नति के बारे में सोचे बिना, दूसरों के जीवन के बारे में अधिक बातें करते रहते हैं। “उन्होंने ध्यान करना छोड़ दिया, वे दुनियादारी में पड़ गए”, इस तरह दूसरों पर दृष्टि देते हैं। लेकिन सच्चा साधना करने वाला सबसे पहले अपने जीवन का स्वयं अवलोकन करता है। वह स्वयं से प्रश्न करता है, “मैं कितना बदल रहा हूँ? मेरा मन कितना पवित्र हो रहा है? मेरी साधना कितनी सच्चाई है?”

तीसरी विषय छोटे-छोटे त्याग किए बिना, महान परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते। इंद्रियों से संबंधित अस्थायी सुखों का ही आश्रय लेते रहेगा, तो इंद्रियातीत परम आनंद का अनुभव नहीं कर सकेंगे। इंद्रियों से अतीत एक परम आनंद की स्थिति होती है। यह ऐसी आनंद की स्थिति है, जिसकी मन भी कल्पना नहीं कर सकता। यही नित्यानंद, निर्विकल्प स्थिति है।

उस स्थिति को प्राप्त करना हो तो इंद्रिय सुखों को कम करना चाहिए। “अच्छा भोजन करना चाहिए, अच्छे दृश्य देखने चाहिए, अच्छा संगीत सुनना चाहिए, शरीर को हमेशा आरामदायक रखना चाहिए”, इस विचार से मन बाहर की चीजों में ही घूमता रहता है, तो अंदर मौजूद आत्मस्वरूप का अनुभव करने का अवसर कम हो जाता है।

इसीलिए निर्विकल्प स्थिति को प्राप्त करना हो तो मन को क्रमशः अंतर्मुख करना चाहिए। इंद्रियों पर निर्भर हुए बिना, साधना, ध्यान और आत्मज्ञान की ओर अपना दृष्टि मोड़ना चाहिए। तभी बाहरी सुखों से अतीत सच्चा परमानंद अनुभव में आता है।

इन तीन विषयों को अपने जीवन में सच्चाई से आचरण करेंगे, तो आपको जो प्राप्त होगा, वह परम श्रेयस ही है। वह परम श्रेयस कब प्राप्त होता है, यानी जब आप आत्मा को जानने के लिए तीव्रता से मेहनत करना शुरू करने पर मिलता है। इसीलिए शंकराचार्य ने बोध कराया है कि “अल्प सुखों को छोड़ दीजिए, अधिक आनंद प्राप्त करिए।”

मनुष्य जिस आनंद को बाहरी दुनिया में खोज रहा है, वह वास्तव में शाश्वत नहीं है। वह केवल ऐसा लगता है कि वह है। जिस प्रकार रेगिस्तान में मृगतृष्णा पानी होने का भ्रम पैदा करती है, उसी प्रकार सांसारिक सुख भी मनुष्य को अस्थायी मायावी आनंद देते हैं।

इसीलिए जब हम अशाश्वत चीजों पर निर्भर होना कम करते हैं, तभी शाश्वत आनंद का अनुभव करने की स्थिति आती है। आमतौर पर मनुष्य का जीवन “रोटी, कपड़ा और मकान” जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। जिनके पास ये नहीं हैं, उन्हें ये चाहिए, और जिनके पास ये हैं, उन्हें इससे भी बेहतर चाहिए। इसी तरह इच्छाओं के पीछे ही पूरा जीवन बीत जाता है।

जब तक शरीर है, तब तक इसकी देखभाल करना भी आवश्यक ही है। स्वस्थ रहेंगे, तभी साधना कर पाएँगे। इसीलिए आहार आवश्यक है, वैसे ही नींद भी शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक है। “रात भर बिना सोए ध्यान करने पर ही महान साधना होती है” ऐसा सोचना उचित नहीं है।

नींद भी प्रकृति द्वारा आपको दिया गया एक वरदान है। शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा हुआ विषय की आपके शरीर में मौजूद अनावश्यक विषैले पदार्थ, मलिनताएँ नींद के समय ही बाहर निकलती हैं। शरीर स्वस्थ होने पर ही मन शांत रहता है। मन शांती से होने पर ही ध्यान अच्छी तरह होता है।

आध्यात्मिक ज्ञान को जानने वाले कुछ नए लोग “गुड़ाकेश” शब्द का सही अर्थ समझे बिना, रात भर बिना सोए बैठे रहने को ही महान साधना है, ऐसा मान रहे हैं। लेकिन इस शरीर को सही विश्राम देना भी आवश्यक ही है। शरीर को कम से कम तीन-चार घंटे की नींद तो चाहिए ही, नहीं तो शरीर कमजोर हो जाता है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है, तो साधना भी नहीं हो पाएगी। इस लोक में आत्मा अपनी यात्रा जारी रखने के लिए शरीर ही साधन है।

लेकिन अधिक समय तक सोना तमोगुण की ओर ले जाता है।

लेकिन जितना आवश्यक है, उतना विश्राम लेकर, तड़का से उठकर ध्यान करना सात्त्विक गुण को बढ़ाता है। सात्त्विक स्थिति में जीना है तो प्रकृति के नियमों का सम्मान करना चाहिए। भगवान ने इस शरीर के लिए नींद को भी एक आवश्यकता के रूप में दिया है। यह केवल शरीर को विश्राम देने के लिए ही नहीं, बल्कि मन और शरीर को संतुलित रूप से काम करने के लिए भी आवश्यक है।

इसीलिए अज्ञान से शरीर को हिंसा करते हुए साधना नहीं करनी चाहिए। सच्ची आध्यात्मिकता का अर्थ शरीर को कष्ट देना नहीं है, बल्कि शरीर का सात्त्विक रूप से उपयोग करना चाहिए।

शंकराचार्य ने कहा है कि अल्प सुखों को छोड़ने पर ही अधिक आनंद प्राप्त कर सकते हैं, वही परम श्रेयस है। प्रेयस का अर्थ सांसारिक मार्ग है, श्रेयस का अर्थ आत्मज्ञान का मार्ग है। सांसारिक मार्ग में मनुष्य छोटे-छोटे सुखों का आस्वाद करते हुए, बड़े सुखों के लिए भागता रहता है। लेकिन आत्म-मार्ग में छोटे-छोटे त्यागों के माध्यम से ही ज्ञान, शाश्वत आनंद मिलता है।

भगवान को वास्तव में जानने की तड़प आपमें पैदा होने पर, भगवान ही सद्गुरु को आपके जीवन में भेजते हैं। जब मनुष्य अज्ञान को ही ज्ञान मानकर भ्रम में जीते समय उस भ्रम को दूर करके सच्चे ज्ञान के मार्ग में चलाने के लिए गुरु आते हैं।

मेरे जीवन में भी ऐसा ही हुआ। लाइब्रेरी में बहुत सारी आध्यात्मिक पुस्तकें होती थे, लेकिन मैं अधिकतर भगवद्गीता ही पढ़ती थी। क्योंकि मेरे आसपास में होने वाले कहते थे कि “भगवद्गीता पढ़ने से पुण्य मिलता है।” मैंने भी यही विश्वास करके पढ़ा। लेकिन सही गुरु न होने के कारण, तेलुगु में पढ़ने पर भी मुझे उसका वास्तविक अंतरार्थ समझ नहीं आया।

गुरु आने के बाद ही पता चला कि ज्ञान हमारे सामने होने पर भी उसे समझने की दृष्टि न हो तो उसका कोई लाभ नहीं होता। पत्नी जी का परिचय होने के बाद जब मैंने भगवद्गीता को फिर से पढ़ा, तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि - भगवान कृष्ण ने इतने अद्भुत सत्य का बोध कराया क्या!” बीस सालों तक पढ़ने पर भी मैं यही समझ पाई थी कि “पुण्य मिलता है।” लेकिन बाद में समझ आया कि उसी पुण्य के फल से ही गुरु मेरे जीवन में आए हैं।

गुरु आने के बाद भी शुरुआत में उनके बाह्य स्वभाव को देखकर मैं डरती थी। तीन महीने तक पास जाने की धैर्य भी नहीं आया। लेकिन भगवान हमें सही मार्ग में चलाने के लिए कई तरह से प्रयास करता है। साम, दाम, भेद, डंडोपायों के माध्यम से भी आपमें बदलाव लाने का प्रयास करते हैं। वैसे ही गुरुजी ने मुझे ज्ञान का बोध कराते रहते थे।

लेकिन मुझे सही ज्ञान न होने के कारण, शुरुआत में तीन महीने तक गुरुजी की बातों का असली मूल्य समझ में नहीं आया। वे बोलते समय गुस्से में ही दिखाई देते थे। इसीलिए उनसे बात करने का भी मन नहीं करता था। बचपन से ही गुस्से में बात करने वालों को देखे, तो मौन रहना मेरी आदत है। इसीलिए पास जाकर बात किए बिना दूर ही रहती थी।

देखिए अगर एक व्यक्ति हमें पसंद न हो, तो उनकी बताई अच्छी विषय भी हम तक नहीं पहुँचतीं। लेकिन जब उस व्यक्ति के प्रति मन में आदर, प्रेम पैदा होता है, तब उनकी हर एक बात हमारे हृदय में बस जाती है।

बाद में मुझे आई हुई बीमारी, ध्यान की वजह से कम होने पर मुझे ध्यान का असली मूल्य समझ में आया। लाइब्रेरी में पुस्तकें पढ़ते हुए

जैसे-जैसे आत्मज्ञान के बारे में पता चलने लगा, इस महान ज्ञान को बोध कराने को आए हुए गुरुजी के प्रति मेरे मन में अपार आदर हुआ।

इसीलिए मेरे जीवन में पहले गुरु पत्नी जी नहीं, बल्कि राघवराव जी हैं। क्योंकि उनके माध्यम से मैं इस मार्ग में आई हूँ। आज मैं इस स्तर पर खड़ी होने का कारण राघवराव जी ही हैं।

उनकी बातें शुरुआत में कठिनता से लगती थीं। लेकिन उनका हृदय मक्खन जैसा था। बस, उनके बोलने का तरीका थोड़ा सख्त था, यही उनका स्वभाव था। आज के समय में ऐसी सख्ती भी आवश्यक ही लगती है। क्योंकि कभी-कभी मनुष्य को जगाने वाली बातें कोमल शब्द नहीं, बल्कि सत्य को सीधे कहने का धैर्य होती हैं।

हमारे बच्चे भी कहते रहते हैं कि “आज आप इस स्तर पर होने का कारण पिताजी ही हैं।” वास्तव में मुझसे भी अधिक उन्हें अपने पिता के प्रति आदर है। क्योंकि वह जो कहते हैं, हमेशा सही ही होता है। लेकिन वह सत्य को बहुत सीधे, सख्ती से कहते थे। उस सख्ती में मौजूद सत्य को पहचानने के लिए मेधाशक्ति, विवेक आवश्यक है।

आज आप इस मार्ग में रहकर हर दिन ज्ञान सुनते हुए, जानते हुए, अपमें बदलाव को बढ़ाते हुए हैं, तो आपको पता चले बिना कई जन्मों की यात्रा आपके पीछे है। कुछ जन्म तमोगुण में, कुछ रजोगुण में, और कुछ सात्त्विक गुण में बीते। कई कर्म करके संचित कर्मों को जमा किया है। उनमें से कुछ ही कर्मों को अभी अनुभव कर रहे हैं, इस थोड़े से दुःख को ही सहन नहीं कर पा रहे हैं।

तो ये संचित कर्म कैसे पिघलेंगे? यानी आप आज जो ध्यान कर रहे हैं, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर रहे हैं, उसी की वजह से ही वे क्रमशः पिघलते जाएंगे। इस सत्य को हमेशा याद रखना चाहिए। नहीं तो ध्यान

करने को आलस आएगा, ज्ञान सुनने को आसक्ति कम हो जाएगी, आत्मज्ञान को बढ़ाने की तड़प भी कम हो जाएगी।

हर मनुष्य अपने भीतर ही अपने दुःख को कम करने की शक्ति रखता है। बाहर से कोई आकर आपकी पीड़ाओं को पूरी तरह दूर नहीं करेगा। भगवान मार्ग दिखाते हैं, लेकिन चलना तो आपको ही है। इसीलिए पत्नी जी मूर्ति पूजा के बारे में भी सख्ती से बोलते थे। “अपने हाथ में कोहिनूर हीरा रखकर, काँच के टुकड़े के लिए घूम रहे हो” ऐसा कहते थे।

तब उन बातों का असली अर्थ समझ में नहीं आया, लेकिन अब समझ में आ रहा है। आत्मा नामक अमूल्य हीरा आपमें ही है। आपकी साधना आपको ही करनी चाहिए, अपना ज्ञान आपको ही बढ़ाना चाहिए, अपने दुःख को आपको ही दूर करना चाहिए; बाहर से कोई आकर आपके जीवन को नहीं बदल सकता।

शुरुआत में जब वे कहते थे कि “मूर्ति केवल पत्थर ही है”, तो गुस्सा आता था। क्योंकि जिस भगवान की आप भक्ति से आराधना कर रहे हैं, उन्हें इस तरह कहना मन को दुख पहुँचाता है। लेकिन सत्य हमेशा कठोर ही होता है; सुनने में दुख लगे, फिर भी वह सच ही है।

आज आप उसी सत्य को समझ रहे हैं। असली भगवान आपमें ही हैं, अपने कर्मों को दग्द करने की शक्ति आपमें ही है, अपने जीवन को आनंदमय बनाने की शक्ति भी आपके हाथों में ही है, अपने दुःख को दूर करने का मार्ग भी आपमें ही है। फिर और कौन आकर आपको शांति, आनंद देगा? सब कुछ आपका प्रयास, आपकी समझ, आपकी साधना पर ही निर्भर होता है।

इसीलिए शंकराचार्य जी ने कहा कि “अल्प सुखों का त्याग करने से अधिक आनंद को प्राप्त कर सकते हैं।” वैसे ही पत्नी जी ने भी

सिखाया कि “मोक्ष का अर्थ किसी अन्य लोक में जाना नहीं, बल्कि मोक्ष का क्षय होना है।” अर्थात् इच्छाओं से रहित स्थिति में रहना ही सच्चा मोक्ष है। “आता है तो आने दो, रहता है तो रहने दो, जाता है तो जाने दो” की स्थिति में पत्नी जी नी जीने को कहा। क्योंकि आपकी योग्यता के अनुसार आपको जो चाहिए, वही मिलेगा। जो भी आए, उसे सहना चाहिए, बर्दाश्त करना चाहिए। चाहे वह कष्ट हो, नुकसान हो, यह स्वीकार करना चाहिए कि “यह मेरा कर्मफल ही है।” आप न चाहें तो भी, जो आना है वह नहीं रुकेगा; प्रारब्ध कर्म तो अनुभव करना ही पड़ता है।

लेकिन साधना की वजह से जीवन में आने वाली कठिनाइयों को बर्दाश्त करने की शक्ति आती है। मेरे जीवन में भी बहुत सारे कष्ट आए, लेकिन साधना की वजह से ही मैं उन्हें बर्दाश्त कर पाई। उन छोटी-छोटी पीड़ाओं को सहन के साथ अनुभव करने के लिए, आज मैं इस महान अंतरानंद का अनुभव करने की स्थिति तक पहुँच चुकी हूँ।

इसीलिए प्रतिदिन साधना करना, आत्मज्ञान बढ़ाने के हर अवसर का उपयोग करना बहुत महत्वपूर्ण है। खाली समय को व्यर्थ विचारों में बिताए बिना स्वाध्याय के लिए उपयोग करना चाहिए। क्योंकि कौन मोक्ष के बारे में कैसे बता रहे हैं, कौन साधना को किस प्रकार विस्तार से समझा रहे हैं, यह जानना चाहिए।

बहुत से लोग कहते हैं, “ध्यान करिए, ज्ञान बढ़ाइए।” लेकिन वास्तव में ज्ञान बढ़ा है? या नहीं? यह आपके व्यवहार में दिखाई देना चाहिए। मन जितना पवित्र हो तो, उतना ही भगवान के करीब पहुँचेंगे।

मनुष्य के रूप में जन्म लेने वाले हर एक को कर्म करना ही चाहिए। लेकिन कौन से कर्म करने चाहिए? स्वार्थ से कर्म कर रहे हैं? सेवा भाव से कर्म कर रहे हैं? ये सभी जानने वाले विषय ही हैं। बहुत से लोग कहते हैं, “यह सब हमें पता है।” लेकिन वास्तव में पता है तो यह

व्यवहार में दिखाई देना चाहिए। बातों में विनम्रता होनी चाहिए, विचारों में पवित्रता होनी चाहिए। आपके बात करने के तरीके में ही पता चलता है कि आपमें कितना ज्ञान है।

आप एक विषय को स्पष्ट रूप से नहीं बता पा रहे हैं, तो इसका अर्थ है कि वह अभी तक अंतरंग में पूरी तरह स्थिर नहीं हुआ है। बात कर पा रहे हैं, तो इसका अर्थ है कि कुछ हद तक समझ में आया है। लेकिन गुरुजन इतने आसानी से, प्रवाह की तरह क्यों बात कर रहे हैं, यानी वे परमात्मा से जुड़े हुए रहते हैं। इसीलिए उन्हें पुस्तकें सामने रखकर बात करने की आवश्यकता नहीं होती। उनके भीतर से ज्ञान स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होता है।

गुरुजन इस पृथ्वी पर शिष्यों को मार्ग दिखाने के लिए आते हैं। शिष्यों को किस समय कौन सा ज्ञान आवश्यक है, परमात्मा उनके माध्यम से वही कहलवाते हैं। इसीलिए गुरु भगवान और मनुष्य के बीच एक पुल की तरह होते हैं। उस पुल पर यात्रा करते हुए, गुरु द्वारा बताई गई विषयों को सीखकर आचरण में रखना चाहिए।

इसीलिए शंकराचार्य जी ने कई ग्रंथों के माध्यम से कहा कि “अल्प सुखों का त्याग करिए, अधिक आनंद को प्राप्त करिए।” परम श्रेयस का अर्थ है परमात्मा के दर्शन का मार्ग है। उस स्थिति को प्राप्त करना हो तो गहन ध्यान, स्वाध्याय, सदाचार, इन सभी की आदत करनी चाहिए।

बाह्य व्यवहार भी सही होना चाहिए। सद्शीलता, सदाचार, धर्मपूर्वक जीना, ये सभी आध्यात्मिक मार्ग में बहुत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन कुछ विशेष संदर्भों में धर्म की रक्षा करने के लिए, धर्म की सीमाओं को थोड़ा पार करने की परिस्थितियाँ भी आती हैं।

उदाहरण के लिए महाभारत में “अश्वत्थामा हतः कुंजराः” कहलवाने का संदर्भ ऐसा ही था। वहाँ धर्म को बनाए रखने के लिए, दुष्टों को दंडित करने के लिए एक व्यूह की आवश्यकता थी। वह लोक-कल्याण के लिए किया गया था। लेकिन ऐसी स्थिति महापुरुषों की होती है।

आपको केवल छोटे-छोटे लाभों के लिए झूठ नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि आप अभी आध्यात्मिक मार्ग में प्राथमिक स्तर में होने वाले साधक हैं। पहली सीढ़ी में होने पर भी धर्म को कभी नहीं लांघना चाहिए। कृष्ण का स्तर अलग है। वे लोक-कल्याण के लिए अवतरित हुए थे, लेकिन आपको अभी अपने अंतर्मुख श्रेयस की ही पूरी तरह से सिद्धि नहीं हुई है।

इसलिए हमेशा धर्म का पालन करते हुए, नीतिवन्त जीवन जीते हुए, छोटे-छोटे त्याग करते हुए महान आनंद प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। “मोक्ष कब आएगा” ऐसा इंतज़ार करना नहीं है; हर क्षण मोक्ष की स्थिति में जीने का प्रयास करना चाहिए।

एक सत्य बोलने पर मनुष्य धैर्य के साथ जी सकता है। लेकिन एक एक झूठ बोलने पर वह झूठ कब बाहर आ जाएगा, इसका डर हर क्षण मन को सताता रहता है। वही डर भगवान द्वारा दी गई पहली सज़ा है। बाहर की दुनिया को पता चलने से पहले, आपका अंतर्मन ही आपको प्रश्न पूछना शुरू कर देता है।

इसलिए अपने ही हाथों से अपने लिए दुःख पैदा करने की परिस्थिति नहीं लानी चाहिए। धर्मपूर्वक जीते हुए, सत्य को जानते हुए, अच्छी साधना करते हुए, आत्मज्ञान को बढ़ाते हुए जीना चाहिए।

संपत्तियों पर नहीं, ज्ञान पर खुशियाँ मनाओ ।

समाज में सबसे महान क्या है ? क्या प्राप्त करने से मनुष्य तृप्ति से जी सकता है ? ऐसा पूछे तो, दुनिया में अधिकतर लोग एक ही उत्तर कहेंगे, “ धन हो तो, संपत्ति हो तो तृप्ति से जिया जा सकता है, ” ऐसा आज के समाज में 99% लोग भी उसी भावना से जी रहे हैं, उसी के लिए प्रयास कर रहे हैं । वे अपना पूरा जीवन भी धन के लिए ही तरस रहे हैं ।

लेकिन कितना प्रयास करने पर भी वे तृप्ति से जी रहे हैं क्या ? ऐसा सोचे, तो किसी के जीवन में भी तृप्ति दिखाई नहीं देती, बल्कि असंतुष्ट जीवन ही अधिक दिखाई देता है । फिर भी हर एक की भावना ऐसा होता है कि ‘ धन हो तो अच्छा रहेगा, धन हो तो सुख से रह सकते हैं, धन हो तो खुशी से रह सकते हैं, धन से ही सब कुछ मिलता है । ’

भगवान से श्रृष्टि किया गया इस सृष्टि में बहुत सी चीजों को धन से प्राप्त की जा सकती हैं । सोचते हैं कि संपत्ति हो तो अनेक सुविधाएँ हासिल की जा सकती हैं । लेकिन इस सृष्टि को सृष्टि करने वाले सृष्टिकर्ता को धन से नहीं जान सकते हैं । उन्हें केवल योग के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन संपत्ति की वजह से परमात्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता । इसीलिए महात्माओं, पुण्यपुरुषों, योगियों ने ध्यान के माध्यम से परमात्मा को प्राप्त किया । जिन लोगों ने परमात्मा से संबंध को बनाने वाला हमेशा संतुष्ट से जीते हैं ।

इसीलिए इस आध्यात्मिक जीवन में आए हुए आप कहीं संपत्ति के प्रति भ्रांति बढ़ाकर साधना में पीछे न रह जाने के लिए हमसे पहले इस मार्ग में चल चुके योगियों ने कई संदेशों के माध्यम से चेतावनी दी है । कई ग्रंथों में भी इसे स्पष्ट रूप से बताया गया है । उन्होंने अपने अनुभवों के माध्यम से बताया कि धन अस्थायी है, लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान शाश्वत है ।

कई पवित्र ग्रंथों में भी यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संपत्ति के प्रति मोह न बढ़ाकर, ध्यान और साधना के माध्यम से परमात्मा को जानना चाहिए।

जब मनुष्य संपत्ति के पीछे अत्यधिक भागता है, तभी धर्म से दूर हो जाता है, ऐसा महापुरुषों ने कहा है। क्योंकि कमाना भी एक नशे की तरह है। शुरुआत में लगता है कि “थोड़ा-सा हो तो काफी है”, लेकिन जैसे-जैसे यह बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे और चाहिए, और अधिक कमाने की आशा बढ़ता ही रहता है।

इस पृथ्वी पर कई लोग राजाओं ने, चक्रवर्तियों ने, धनवानों ने बहुत मेहनत करके कमाया। बहुत परिश्रम करके राज्यों को निर्माण किया, वैभवशाली जीवन जिया। लेकिन समय बीतने के बाद उनके नाम कितने लोगों को याद हैं ?

श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध जैसे महापुरुषों को ही दुनिया युगों-युगों से स्मरण करती आ रही है। क्योंकि वे केवल अपने लिए नहीं जिए, लोगों के लिए जिए, सत्कर्मों को किया। अपना जीवन को धर्म के लिए, लोगों के भलाई के लिए अंकित कर दिया, योगम और आध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से सत्य को जान लिया, उस सत्य मार्ग को दुनिया को बताया। इसीलिए उनका नाम इतिहास में शाश्वत से रह गया।

कई राज्यों को जीतने वाले चक्रवर्तियों ने भी समय बीतने के साथ बहुत लोग उन्हें भूल गए। हालाँकि बलि चक्रवर्ती ने धर्मनिष्ठा से, दानगुण से इतिहास में एक विशेष स्थान हासिल किया। वामन ने तीन कदम भूमि माँगी, तब गुरु शुक्राचार्य ने “मत दो” कहने पर भी, बलि चक्रवर्ती ने अपने धर्म को नहीं छोड़ा। तब उन्होंने अपने गुरुजी से बहुत ही बढ़ाई से इस प्रकार कहा। इस पृथ्वी पर कई राजा आए, कई राज्यों को

जीता, महान चक्रवर्ती बने, लेकिन आज उनके नाम किसी को याद नहीं हैं। लेकिन जो धर्म का आचरण करते हैं, दानगुण से जीते हैं, दूसरों की सहायता करते हैं, ऐसे महात्माओं के नाम ही इतिहास में शाश्वत से रह जाते हैं।

इसीलिए इस जीवन में संपत्ति से अधिक धर्म महान है, धन से अधिक दान महान है, भौतिक सुखों से अधिक आध्यात्मिक साधना महान है। संपत्ति शरीर को सुविधा दे सकता है, लेकिन योग मार्ग और परमात्मा से संबंध ही आपके जीवन को सच्ची तृप्ति, शांति, आनंद दे सकते हैं।

इस पृथ्वी पर असली धर्म यह है कि आपसे नीचे की स्थिति में रहने वाले लोग आपके पास आने पर “हमारे पास नहीं है”, उन्हें थोड़ी-सी भी तृप्ति होने लायक कुछ देना ही भलाई है। इसीलिए दान इतना महान कहते हैं। लेकिन धर्म, दान के प्रति वास्तव में प्रतिबद्ध रहने वाले कौन हैं, तो योगी, ज्ञान प्राप्त करने वाले ही हैं। क्योंकि वे सभी विषयों में भी धर्म को ही आचरण करते हैं। योग जीवन का अर्थ, एक तरह से कहा जाए तो, धर्मपरायण जीवन ही है। भोग में बदनामी आ सकती है, अधर्मपूर्वक जिया जा सकता है, स्वार्थी जीवन हो सकता है। लेकिन योग मार्ग हमेशा धर्मपरायण जीवन जीने की ही आदत डालता है।

भगवान को पसंद आने के अनुसार जीना ज्ञानी का लक्षण है। लेकिन भगवान के बारे में नहीं बल्कि संपत्ति के लिए, इस पृथ्वी पर नाम-प्रतिष्ठा के लिए, भोगों के लिए जीने वाला स्वार्थ से रहित नहीं होता, अधर्म से रहित भी नहीं होता। इसीलिए भगवान से अधिक सृष्टि को ही चाहने वाला धर्म का पूरी तरह आचरण नहीं कर सकता।

इसीलिए महात्माओं ने कहा है, “संपत्तियों पर नहीं, ज्ञान पर खुशियाँ मनाओ।” आपने कितना धन कमाया, यह नहीं बल्कि आपमें

कितना ज्ञान, कितना विवेक बढ़ा है, यही महत्वपूर्ण है।

इसीलिए वशिष्ठ जी ने कहा कि अष्टमदों में संपत्ति की वजह से भी अहंकार पैदा होता है। मुख्य रूप से मनुष्य में तीन प्रकार का घमंड दिखाई देता है। वे हैं—धनमद, विद्यामद, रूपमद।

धन है ऐसा घमंड, अधिक पढ़ा हूँ ऐसा अहंकार, सुंदर हूँ ऐसा घमंड—ऐसी बातें मनुष्य को धीरे-धीरे पतन की ओर ले जाती हैं।

इसीलिए महात्माओं ने कहा है कि रूपमद, कुलमद, विद्यामद, धनमद जैसे अहंकार मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में रुकावट बनते हैं। जिसके पास ज्ञान होता है, वह विनम्रता से रहता है, लेकिन जब अहंकार बढ़ता है, तो मनुष्य अपना वास्तविक मूल्य खो देता है।

अब आप ध्यान के मार्ग पर आ गए हैं। आपके पास संपत्ति होगी, लेकिन इस संसार में आपसे भी अधिक संपत्ति वाले लोग होते हैं। इसीलिए हर महात्मा हमें एक ही संदेश देते हैं – कभी भी संपत्ति की वजह से घमंड मत करो। वह आपमें अहंकार बढ़ा सकती है।” क्योंकि संपत्ति मनुष्य को सुविधाएँ दे सकती है, लेकिन विनम्रता नहीं दे सकती। जहाँ अहंकार बढ़ता है, वहाँ आध्यात्मिक उन्नति कम हो जाती है।

रामकृष्ण परमहंस ने इस विषय को बहुत ही सुंदर उदाहरण के साथ बताया है। अंधेरा होते ही जुगनू चमकने लगते हैं। तब वे अहंकार करने लगते हैं कि “हमारी वजह से ही संसार में उजाला आ रहा है।” कुछ समय बाद आकाश में तारे दिखाई देते हैं, तारों की रोशनी के सामने जुगनुओं की रोशनी कम हो जाती है।

लेकिन कुछ समय बाद चंद्रमा उदय होता है। चंद्रमा के चांदनी की सामने तारों की रोशनी भी फीकी पड़ जाती है। तब चंद्रमा सोचता है कि “मैं जुगनुओं से, तारों से अधिक रोशनी दे रहा हूँ।”

लेकिन अंत में सूर्य उदय होता है। सूर्य की रोशनी के सामने जुगनू, तारे, चंद्रमा सभी फीके पड़ जाते हैं। इस उदाहरण के माध्यम से रामकृष्ण परमहंस ने यह संदेश दिया है कि इस दुनिया में कोई कितना भी महान क्यों न हो, उससे भी महान कोई न कोई होता है, लेकिन सबसे महान भगवान ही हैं।

आज एक करोड़पति को देखते हैं, उससे अधिक महान कोई और होता है, उससे भी अधिक कोई और होता है। इस तरह इस दुनिया में हमेशा कोई न कोई अधिक ही दिखाई देता है। लेकिन इन सभी बड़े-बड़े करोड़पतियों को भी सृष्टि करने वाला वही भगवान है। सबसे बड़ा असली महा-धनवान, असली करोड़पति भगवान ही है। यह जाने बिना इस पृथ्वी पर जो भी देखें, तो “यही महान है, वही महान है” ऐसा मानते हुए, जिनके पास वे हैं, वे अहंकार बढ़ा रहे हैं।

लेकिन जो यह समझ लेते हैं कि इस सृष्टि को सृष्टि करने वाला सृष्टिकर्ता ही सबसे महान है, उन्हीं तक पहुँचने के लिए आवश्यक मार्ग को जानकर उस मार्ग में चलते हैं, वही वास्तव में महान बनते हैं। लेकिन भगवान हमको जानना हो तो सबसे पहले मन को पवित्र करना चाहिए। क्योंकि बुद्धि में मौजूद ज्ञान प्रकाश में आने के लिए मन निर्मल होना चाहिए। उस मन को पवित्र रखने की शक्ति केवल ध्यान के वजह से ही मिलती है। ध्यान आपमें होने वाला अशांति को दूर करके, आत्मज्ञान का मार्ग दिखाता है।

इसीलिए शंकराचार्य जी ने “नित्यानित्य वस्तु विवेक” का उपदेश दिया था। अर्थात् क्या शाश्वत है, क्या अशाश्वत है, यह जानने का विवेक मनुष्य में आना चाहिए। अनित्य भौतिक पदार्थों के पीछे पड़कर अंत में नष्ट होने वाले राक्षस हैं। लेकिन नित्य होने वाले परमात्मा को प्राप्त करने

का प्रयास करने वाले दैवी स्वभाव को प्राप्त करते हैं। जो लोग यह चाहते हैं कि “मुझे परमात्मा चाहिए, उनके दर्शन चाहिए,” वे सांसारिक जीवन में भी तृप्ति से जी पाते हैं। क्योंकि उनका आनंद बाहरी दुनिया पर निर्भर नहीं होता। इसीलिए भगवान भी उन तक पहुँचने का प्रयास करने वालों को संपत्तियाँ देते हैं। लेकिन उन संपत्तियों को देते हुए, इनके आने के बाद तुममें अहंकार बढ़ेगा या विनम्रता बढ़ेगी, यह परीक्षा लेते रहते हैं। क्योंकि संपत्ति एक परीक्षा है। यदि इसका सदुपयोग किया जाए, तो यह आशीर्वाद बन जाती है। यदि इसे अहंकार में बदल दिया जाए, तो यही पतन का कारण बन जाती है।

कभी-कभी आपकी चाही हुई सभी चीजें मिल जाना भी भगवान द्वारा आपकी परीक्षा लेने के लिए ही है। क्योंकि संपत्तियाँ, सुविधाएँ, इच्छाएँ पूरी होने पर मनुष्य में अहंकार बढ़ता है? या विनम्रता बढ़ता है? यह वहीं पता चलता है। इसीलिए महात्माओं ने कहते रहते हैं, “इच्छाएँ कम करिए।” साधना करते हुए भी यदि इच्छाएँ बढ़ा लें, तो सारी आध्यात्मिक शक्ति फिर से भौतिक विषयों पर ही खर्च हो जाती है। इससे अहंकार बढ़कर साधना में पिछड़ने का खतरा रहेगा।

इसीलिए गुरुजन “नित्यानित्य वस्तु विवेक” के बारे में बताते रहते हैं। अर्थात् क्या शाश्वत है, क्या अस्थायी है, यह जानने का ज्ञान आना चाहिए। इतिहास में बहुत से राक्षसों ने अपनी इच्छाओं की वजह से अपार संपत्ति, शक्तियाँ प्राप्त करने पर भी अंत में नाश हो गए। लेकिन इच्छाओं से अधिक धर्म को, भगवान को मुख्य रूप से मानने वाले देवताओं ने उन्नत स्थिति को प्राप्त की, तृप्ति से जिया।

पत्नी जी ने भी कई बार एक महान बात कही थी, “साधना कर रहे हो तो किसी विशेष चीज़ की इच्छा मत करो।” तुम्हें वास्तव में जो

आवश्यकता है, वे सभी भगवान प्रकृति के माध्यम से समय पर देते ही रहते हैं। अनावश्यक चीजों के लिए ध्यान की शक्ति को खर्च करना व्यर्थ है।

इसीलिए सच्चे गुरुजन ने शिष्यों को इच्छाएँ बढ़ाने का मार्ग नहीं दिखाते। क्योंकि इच्छाओं के पीछे भागने से मन फिर से सांसारिक मोह में पड़ जाता है। लेकिन विचार करने से ज्ञान बढ़ता है। इसीलिए वशिष्ठ जी ने कहा था, “विचार ही परम ज्ञान है।”

तो फिर महात्माओं ने इच्छाएँ क्यों न रखने को कहा? क्योंकि इच्छाओं के साथ जीने वाले लोग अंत में असंतुष्ट ही रह जाते हैं। लेकिन इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने वाले शांति, तृप्ति, दैवीय अनुभूति प्राप्त करते हैं।

मनुष्य इस पृथ्वी पर केवल भौतिक सुखों के लिए नहीं आया है। दैवत्व को जानने के लिए, अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने के लिए आया है। ऐसे में यदि इच्छाओं के लिए ध्यान की शक्ति को व्यर्थ किया जाए, तो फिर बार-बार उन्हीं के लिए जन्म-मरण के चक्र में घूमना पड़ता है।

इसीलिए इच्छाओं के बिना जीना महान है। सच में कहें तो मनुष्य की सबसे बड़ी इच्छा यही है - “खुद को जानना, अपने भीतर के परमात्मा को प्राप्त करना।”

लेकिन आज के समाज में मनुष्य की पूरी सोच धन के चारों ओर ही घूम रही है। मानते हैं कि “धन हो तो सब कुछ आता है, धन में ही आनंद है।” लेकिन वह वास्तविक आनंद नहीं है, केवल एक भ्रम है। वास्तव में जब मनुष्य अंतर्मुख होकर आत्मा तक पहुँचने के लिए साधना करता है, तब उसके पास हो या न हो, वह तृप्ति से जीना शुरू करता है।

बगल वालों से तुलना करना छोड़ने के दिन ही सच्चे आनंद की शुरुआत होती है।

हमें नहीं है, हम दुखी नहीं होते। लेकिन जब कोई यह याद दिलाता है कि “उनके पास है, क्या आपके पास नहीं है?”, तभी दुख शुरू होता है। यही सांसारिक जीवन का स्वभाव है। लेकिन आध्यात्मिक जीवन में आने के बाद एक ऐसी निश्चिंतता मिलती है। यह विश्वास आता है कि “अगर मुझे आवश्यकता होती है तो भगवान अवश्य देंगे, आवश्यकता न होने की वजह से ही वह मेरे पास नहीं है।”

तब “उनके पास कार है, बंगला है” ऐसा नहीं, बल्कि “क्या मेरे पास जो ज्ञान है, वह उनके पास है?” ऐसा सोचने की स्थिति आती है। क्योंकि ज्ञान धन पैसे से नहीं कमाया जा सकता है। पैसा कमाया जा सकता है, लेकिन ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्यता, साधना, दैवी कृपा की आवश्यक है।

पैसा आज हमारे पास हो सकता है, कल किसी और के पास जा सकता है। माता-पिता द्वारा कमाई गई संपत्ति अंत में बच्चों को ही जाती है। यानी आप कितना भी कमा लें, अंत में आपके साथ कुछ नहीं आता। लेकिन ज्ञान वैसा नहीं है, इसे जितने लोगों को बाँटने से घटेगा नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाएगा।

बहुत से लोगों को पैसा तो चाहिए, लेकिन ज्ञान की आवश्यकता महसूस नहीं होती। क्योंकि इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए पिछले जन्म का पुण्य, योग्यता होनी चाहिए। योग्यता होने वाले लोग ही इस मार्ग में आते हैं। इसीलिए इस पृथ्वी पर अभी भी बहुत से लोग ज्ञान के बारे में जाने बिना, कैसे सीखना है, यह भी न जानने की स्थिति में हैं। सबको न मिलने वाला। सभी को आसानी से प्राप्त न होने वाला यह ज्ञान है।

इसीलिए महात्माओं ने हमेशा एक ही संदेश बताते हैं। “संपत्तियों पर नहीं, ज्ञान पर खुशियाँ मनाओ।” क्योंकि संपत्ति अनित्य है, आज होती है, कल शायद न हो सकती। लेकिन ज्ञान शाश्वत है, ज्ञान की वजह से ही सच्चा आनंद, शांति, तृप्ति मिलती है।

मनुष्य इस पृथ्वी पर केवल भौतिक सुखों के लिए नहीं आया है, बल्कि अपने भीतर के दिव्यत्व को जानने के लिए, अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने के लिए आया है। ऐसे में इच्छाओं से ध्यान शक्ति को व्यर्थ करते हैं, तो बार-बार उन्हीं के लिए जन्म-मरण के चक्र में घूमना पड़ता है। इसीलिए महात्माओं ने इच्छा रहित जीवन को ही महान बताया है। सच कहें तो मनुष्य की सबसे बड़ी इच्छा यही है – खुद को जानना चाहिए, अपने भीतर के परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए।

लेकिन आज के समाज में मनुष्य की पूरी सोच केवल धन के चारों ओर ही घूम रही है। मानते हैं कि “धन हो तो सब कुछ मिल जाता है, धन में ही आनंद है।” लेकिन वह वास्तविक आनंद नहीं है, केवल एक भ्रम ही है। वास्तव में जब मनुष्य अंतर्मुख होकर आत्मा को प्राप्त पहुँचने के लिए साधना करता है, तब उसके पास हो या न हो, वह तृप्ति से जी सकता है।

बगल वालों से तुलना करना छोड़ देने के दिन ही आप सच्चे आनंद का अनुभव करते हैं। मुझे नहीं है, ऐसा सोचकर दुःखी नहीं होते। लेकिन जब कोई याद दिलाता है कि “उनके पास है, आपके पास नहीं है?”, तभी दुख शुरू होता है।

सांसारिक जीवन में ऐसी छोटी-छोटी विषय बहुत-सी होती हैं। लेकिन आध्यात्मिक जीवन में आने के बाद एक निश्चितता मिलती है। “मुझे आवश्यकता होगी, तो भगवान वह भी देते हैं। आवश्यकता नहीं है,

इसीलिए वह मेरे पास नहीं है, ” ऐसा भावना आता है। “उनके पास कार है, बंगला है” ऐसा नहीं, बल्कि “क्या मेरे पास जो ज्ञान है, वह उनके पास है ?” ऐसा सोचने की स्थिति आती है।

क्योंकि ज्ञान धन पैसे से कमाया नहीं जा सकता। पैसे कमाए जा सकते हैं, लेकिन ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्यता, साधना, दैवी कृपा की आवश्यकता है। उनके पास संपत्ति हो सकती है, लेकिन आपके पास ज्ञान हो तो वही महान संपत्ति है।

यह सत्य समझ में आता है, तब मनुष्य धन होने पर गर्व नहीं करता, खुशी नहीं होता। क्योंकि आज आपके पास जो संपत्ति है, वह कल किसी और के पास चली जा सकती है। माता-पिता द्वारा कमाई गई संपत्ति अंत में बच्चों को ही जाती है। यानी कितना भी कमा लें, अंत में आपके साथ कुछ भी नहीं आता, कुछ भी नहीं रहता।

लेकिन ज्ञान जितने लोगों को बाँटने से, कम नहीं होता, और बढ़ता ही जाता है। बहुत से लोगों को पैसे चाहिए, लेकिन ज्ञान की आवश्यकता नहीं मानते हैं। क्योंकि इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म का पुण्य, योग्यता होनी चाहिए। योग्यता होने वाले ही इस मार्ग पर आते हैं।

माता-पिता द्वारा कमाई हुई सारी संपत्ति अंत में बच्चों को ही जाती है। यानी कितना भी कमा लें, अंत में आपके पास क्या रहेगा ? कुछ भी नहीं रहेगा। लेकिन यह ज्ञान आप जितने लोगों को बाँटने से, बढ़ती ही जाती। बच्चों से कहें कि “यह ज्ञान लीजिए”, तो कई लोग कहेंगे “हमें जरूरत नहीं है”, लेकिन पैसा लेने के लिए किसी को कोई आपत्ति नहीं होती। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म की योग्यता होनी चाहिए। योग्यता होने वाले ही इस मार्ग में आते हैं, इसलिए यह ज्ञान सभी को नहीं

मिलता ।

इस पृथ्वी पर ऐसे कई लोग हैं जो अभी भी ज्ञान से अनजान हैं । कैसे सीखना है, कहाँ जाना है, यह भी नहीं जानते । यानी अभी भी उन पर भगवान की कृपा पूरी तरह से नहीं हुई है । इसीलिए महात्माओं ने हमेशा कहते हैं—संपत्तियों पर नहीं, ज्ञान पर खुशियाँ मनाओ ।” क्योंकि ज्ञान की वजह से ही शाश्वत, नित्य आनंद आता है । संपत्तियाँ अनित्य हैं, आज हो सकती हैं, कल हाथों से फिसल सकती हैं । अब बहुत से लोग माता-पिता अपनी सारी संपत्ति बच्चों को लिख रहे हैं । तब वह संपत्ति उनके हाथों से चली गई जैसी ही है न ? कितना भी कमा लेने पर भी अंत में आपके पास क्या रहेगा ? कुछ भी नहीं रहेगा ।

इसीलिए संपत्तियाँ बढ़ने पर इच्छाएँ भी बढ़ती हैं । “आपके पास पैसा है न, यह खरीदें क्या ? वह खरीदें क्या ? इसे घर में रखना चाहिए क्या ? उसे ले आना चाहिए क्या ?” ऐसी एक इच्छा के पीछे एक और इच्छा आती ही रहती है । इस तरह आप पूरी तरह से संसार की ओर चले जाते हैं । लेकिन जितना ज्ञान बढ़ाएँगे, तो उतना ही परमात्मा को करीब पहुँचेंगे । यह ज्ञान बाँटने से कम नहीं होता, बाँटने पर बढ़ता ही जाता है, लेकिन पैसा जितना बचाकर रखेंगे, उतना ही लूटा जाएगा ।

इसलिए संपत्तियाँ होने पर खुश होकर अहंकार मत बढ़ाओ । केवल ज्ञान की वजह से ही आप महान स्थिति में चिरस्थायी रूप से बने रह सकते हैं । शाश्वत आनंद की स्थिति भी ज्ञान की वजह से ही आती है । यह जानने के बाद से ही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए । जितने लोगों को बाँटते हैं, उतना ही वह बढ़ता है ।

सांसारिक संपत्तियों को बढ़ाने के लिए बहुत मेहनत करनी चाहिए । लेकिन आध्यात्मिक संपत्ति को बढ़ाना शुरू में कठिन लगने पर भी, बाद में

बहुत आनंददायक बन जाता है। क्योंकि संसार की ओर भागने वाला मन आत्मा की ओर मुड़ने के लिए शुरु में बहुत जिद्दी होता है, उसे आत्मा की ओर मुड़ना पसंद नहीं होता। इसीलिए कई तरह के विचार आकर ध्यान में बैठने नहीं देते। लेकिन जबरदस्ती से अभ्यास करते रहते हैं, तो यही मन आत्मा की ओर मुड़ना शुरू करता है। वशिष्ठ जी ने भी यही कहा, श्रीकृष्ण ने भी “अभ्यास” के बारे में ही कहा।

अभ्यास करते-करते यह मन आत्मा की ओर मुड़ना पसंद करने लगता है। इसके बाद यह संसार अशाश्वत है, ऐसा वैराग्य, विवेक आते हैं। कौन-सा विवेक? यानी “परमात्मा के पास पहुँचने पर ही शाश्वत आनंद की स्थिति होती है”, ऐसा विवेक। जब यह विवेक आता है, तब अधिक समय ध्यान में ही बिताने का मन करता है। जिस दिन यह अनुभव होता है कि “आँखें खोलने पर अशान्ति, आँखें मूंदने पर शान्ति” उस दिन ज़रूरी काम पूरे करके फिर से ध्यान में बैठने का मन करता है। क्योंकि कोई भी अशांति को अशांति के रूप में पहचान नहीं रहा है। आँखें खोलकर कुछ भी देखते हैं, तो तुरंत “वो चाहिए” ऐसी इच्छा पैदा होती है। वह पूरी हो जाए तो अस्थायी खुशी आती है, पूरी न हो तो दुःख होता है। लेकिन दुःख हमेशा अशान्ति ही देता है, खुशी भी अस्थायी ही है।

इसलिए इन्द्रियों को काम देने के बजाय, इन्द्रियों के काम को कम करके मन को आत्मा की ओर मोड़ें तो हमेशा आनंदमय जीवन ही होता है। आपका ज्ञान कब बढ़ता है यानी इन्द्रियों का काम कम करने पर। क्योंकि आँखों, कानों, वाणी, शरीर के माध्यम से आप बहुत सारी शक्ति को खर्च कर रहे हैं। आपको पता चले बिना ही आत्मशक्ति कम होती रहती है। अनावश्यक जगहों पर घूमकर, शरीर को कष्ट देकर, फिर थककर “शरीर साथ नहीं दे रहा” ऐसा दुःख करते हुए निराश में पड़ जाते हैं।

इसीलिए इन्द्रियों का काम अधिक होने पर आत्म शक्ति खर्च होती रहती है। इन्द्रियों का काम कम करके आँखें बंद करके ध्यान में बैठने पर आत्मशक्ति बढ़ती है, वह शक्ति ज्ञान को बढ़ाती है।

जैसा कि आपने कहा, ध्यान की वजह से ज्ञान शक्ति, ग्रहण शक्ति, सभी बढ़ती हैं। ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता है, परमात्मा के निकट होते हैं। परमात्मा के निकट होने का अर्थ आनंद के निकट होना। तब हो या न हो, आनंद से जी सकते हैं, हमेशा आनंद की स्थिति में रहते हैं। इसीलिए पुरुषोत्तम के जैसे जीना चाहिए यानी द्वंद्वों में भी समस्थिति में रह सकना चाहिए, ऐसा कहते हैं। वह स्थिति कब आती है, यानी साधना अधिक करने पर।

तब समृद्धि में भी, गरीबी में भी, सुख में भी, दुःख में भी एक साक्षी स्थिति में रहकर हर चीज़ को स्वीकार करते रहते हैं। इसीलिए संपत्तियाँ होने पर खुश मत मनाओ। वे भगवान ने आपमें अहंकार है या नहीं, यह परीक्षण करने के लिए दिए हुए हैं। उस परीक्षा में अहंकार बढ़ जाए तो दी हुई सारी चीज़ें वापस ले ली जाती हैं। इसीलिए हमेशा यह याद रखते हुए कि परमात्मा आपमें आत्मा के जैसे हैं, उन्हीं पर दृष्टि रखना चाहिए। तभी ज्ञान आता है। महात्माओं ने कहा है कि ज्ञान की वजह से खुशियाँ मनाना चाहिए, लेकिन संपत्तियों की वजह से नहीं।

फिर आप इसी मार्ग में ही स्थिर रहना चाहिए, फिर माया में न पड़ें, महात्माओं ने प्रतिदिन आपको ऐसे संदेश बताते हैं।

पिरामिड मास्टर्स के 18 आदर्श सूत्राएँ

1. सही ध्यान का अर्थ है “आनापानसति ध्यान” करना और सभी से करवाना।
2. सही आध्यात्मिक पुस्तकों को पढ़ना; उन्हीं को सभी से पढ़वाना।
3. ध्यान के अनुभवों और पुस्तक ज्ञान को सभी नियमित रूप से आपस में बांटना।
4. पूर्णिमा ध्यान नियमित रूप से करना; सभी से पूर्णिमा ध्यान करवाना।
5. जितना संभव हो मौन रखना।
6. जब भी संभव हो, पिरामिड शक्ति का उपयोग करना।
7. दवाइयों और डॉक्टरों को भूल जाइए! अपनी शक्ति से हर व्यक्ति स्वयं को स्वस्थ करना चाहिए।
8. मांसाहार बिल्कुल नहीं खाना! अंडे भी निषिद्ध हैं! शाकाहार में भी सीमित आहार ही उचित है।
9. प्रकृति के साथ सहजीव सीखते रहना चाहिए; जंगलों और वन क्षेत्रों में विहार यात्राएँ और ट्रेकिंग करते रहना चाहिए।
10. आध्यात्मिकता में कोई विशेष वेशधारण, नाम-धारण नहीं है! तिलक, बिंदी आदि बिल्कुल नहीं होने चाहिए!
11. बचपन से ही बच्चों को ध्यान का प्रशिक्षण देना।
12. कोई भी शिष्य नहीं होना चाहिए... सभी को मास्टर के रूप में ही विराजमान होना चाहिए।
13. ध्यान प्रशिक्षण में ‘पैसे का लेन-देन’ बिल्कुल भी नहीं होना चाहिए।
14. मूर्ति पूजा नहीं! आत्म सत्य की आराधना ही मुक्ति का मार्ग है! जीवित मास्टर्स की भी पूजा नहीं करनी चाहिए।
15. हर व्यक्ति अपनी समस्याओं को स्वयं आत्मा शक्ति का उपयोग करके हल करना चाहिए।
16. गृहस्थ रहते हुए, अपने-अपने काम करते हुए, जीवन-मुक्ति प्राप्त करना।
17. सभी गाँवों और सभी नगरों में नियमित रूप से पिरामिड ध्यान केंद्र स्थापित करना।
18. सभी पिरामिड मास्टर्स अपने-अपने ध्यान-अनुभवों को ग्रंथ रूप में तैयार करके नियमित रूप से प्रकाशित करें।

Programs by the Tatavarthy's that will be broadcasted on YouTube:

a) Channel name: **Tatavarthy Veera Raghava Rao**

This channel has 2,000+ videos featuring messages from Mr and Mrs Tatavarthy.

b) PMC has also launched a YouTube channel for Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.

Channel name: **Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.**

c) For messages from trainees who have trained under Mr. and Mrs. Tatavarthy, watch the Tatavarthy Spiritual Trainees YouTube channel.

d) You can also go directly to the YouTube app, type Tatavarthy Veera Raghava Rao in the search bar, and watch all the Mr. and Mrs. Tatavarthy videos.

To watch Tatavarthy's zoom sessions:

a) Silence meditation from **4 a.m. to 6.30 a.m.**, followed by messages related to soul-knowledge from **6.30am to 7.30am.**

Zoom ID: **2413823868** Password: **RAO**

b) The above-mentioned Zoom session will also be livestreamed on **YouTube** from **6.30am to 7.30am.**

c) Those who are in the TVR & TRL WhatsApp group will receive Zoom and YouTube links, along with details about the Tatavarthy's classes. They must save Sindhura's phone number: **8555995217**

d) Those who wish to join the Tatavarthy's WhatsApp group can contact Sindhura: 8555995217, Madhu: 7893917364 or visit www.tst.org.in and click on the "Join WhatsApp Group" link.

श्री तटवर्ती वीर राघवराव के हिन्दी किताब

1. आत्म शास्त्र ।.....	Rs.200/-
2. ध्यान विद्या ।.....	Rs.160/-
3. भगवद गीता का सार ।.....	Rs.160/-
4. सत्य मार्ग ।.....	Rs.160/-
5. मरने से पहले मरना है ।.....	Rs.130/-
6. गाईडिंग ध्यान क्यों नहीं ?.....	Rs.120/-
7. भगवान कौन है ।.....	Rs.120/-
8. कर्म सिद्धांत ।.....	Rs.120/-
9. विज्ञान का अर्थ - निहितार्थ ।.....	Rs.120/-
10. ब्रह्म ज्ञान ।.....	Rs.100/-
11. यह जीवन क्यों है ?.....	Rs.100/-
12. मेहर बाबा का संदेश ।.....	Rs.100/-
13. कौन सा ध्यान सही है ?.....	Rs.100/-
14. इच्छाओं के कारण होने वाली हानियाँ.....	Rs.100/-
15. शंकराचार्य जी का ज्ञान संदेश.....	Rs.100/-
16. कठोपनिषद्.....	Rs.100/-
17. उपमान ज्ञान संदेश.....	Rs.100/-
18. शिरडी साई के संदेशों.....	Rs.100/-
19. मरने के बाद, साथ में आने वाले विषयों ।.....	Rs.80/-
20. भगवत के दृश्यों का अर्थ ।.....	Rs.80/-
21. मन - 01.....	Rs.80/-
22. मन - 02.....	Rs.80/-
23. आत्म हंतक कौन होता है ।.....	Rs.70/-
24. स्त्री जन्मों में सीखने वाले विषयों, पुरुष जन्मों में सीखने वाले विषयों ।.....	Rs.70/-
25. दुख निवारण का मार्ग.....	Rs.75/-
26. उत्तम पुरुष.....	Rs.60/-
27. आर्थिक स्थिति बढ़ाना है तो ?.....	Rs.60/-
28. निर्वाण मार्ग.....	Rs.60/-
29. बुद्धि विकसित होने वालों का व्यवहार ।.....	Rs.60/-
30. विदुर के संदेशों.....	Rs.50/-
31. "जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए ?".....	Rs.50/-
32. सत्य.....	Rs.50/-
33. क्या हम इस लोक के वासी हैं या परलोक के वासी हैं ?.....	Rs.50/-
34. गुरु को पहचानना कैसे ?.....	Rs.50/-
35. विद्यार्थियों के विकास के लिए ध्यान विद्या.....	Rs.50/-
36. शाकाहार ही मानव का आहार है!.....	Rs.50/-
37. ब्रह्म क्या है ?.....	Rs.50/-
38. शंकराचार्य जी का जाग्रत पंचक.....	Rs.50/-
39. शंकराचार्य जी का निर्वाण शब्दकम.....	Rs.50/-
40. चैंपियन बनना हो तो ?.....	Rs.50/-
41. तीन प्रकार के जीवन.....	Rs.50/-
42. महात्माओं का संदेशों.....	Rs.50/-
43. अहिंसा और शखाहार.....	Rs.50/-
44. संकल्प अर्थात् ?.....	Rs.40/-



जीवन में कुछ भी हासिल करना है, तो सही साधना, सत्य ज्ञान होना चाहिए। इन दोनों के होने पर ही वह कुछ भी हासिल कर सकता है। सृष्टि में मौजूद 84 लाख जीव-राशियों में मानव जन्म एक ही भगवान को जान सकने वाला, कुछ भी हासिल कर सकने वाला जन्म है। गुरुओं ने आपको कितना भी बोध कराया कि “आप आत्मा हैं”, फिर भी आप आत्मा के जैसे जी नहीं पा रहे हैं। “मैं” कहते ही आपको शरीर ही याद आता है, वैसे ही व्यवहार करते आए हैं। यह जीवभाव है, क्योंकि आपने शरीर को ही “मैं” माना है, लेकिन “मैं आत्मा हूँ” ऐसा नहीं माना।

एक और महत्वपूर्ण कारण विषयासक्ति। नए विषय जानने की आसक्ति से दूसरों के बारे में सुनते रहते हैं। सुनी हुई विषयों को मन में बार-बार याद करते हैं, वह पर्याप्त न होने पर किसी और को बताते हैं, इस तरह समय बीतता जाता है। यदि ऐसे ही रहोगे तो जीव की तरह ही रहोगे, भगवान नहीं बन पाओगे। इसलिए ध्यान, ज्ञान के द्वारा सबसे पहले आपमें बदलाव आना चाहिए। क्योंकि आप ध्यान करेंगे तो लाभ आपको ही होगा, आप ज्ञान प्राप्त करेंगे तो आपका जीवन ही बदल जाएगा।

₹ 60/-

- ब्रह्मविद्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

Scan these QR codes using Google Lens to download the books of Mr. Tatavarthy Veera Raghava Rao & Mrs. Rajyalakshmi from the website.



Telugu
Books



English
Books



Hindi
Books



Kannada
Books



Tamil
Books